पूँजीवादी साम्राज्य
और
सामाजिक भेदभाव

सय्यद शुजाअत हुसैनी

अनुवाद

मुहम्मद अली शाह शुऐब

पुनरीक्षण

नसीम ग़ाज़ी फ़लाही

विषय-सूची

☆☆☆

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम
'अल्लाह के नाम से जो बड़ा दयावान अत्यन्त कृपाशील है।'

दो शब्द

साम्राज्यवाद स्वयं में ही एक दमनकारी और शोषण पर आधारित व्यवस्था है। लेकिन जब साम्राज्य पूँजीवादियों के हाथ में चला जाए तो इसका परिणाम तदधिक भयावह हो जाता है। पूँजीवादी साम्राज्य केवल अर्थव्यवस्था पर ही अपना वर्चस्व स्थापित करके शान्त नहीं हो जाता बल्कि उसका शिकार समाज और राजनीति भी होती है और फिर शोषण का एक न समाप्त होनेवाला सिलसिला आरम्भ होता है। उसका शिकार केवल कमज़ोर वर्ग ही नहीं होता बल्कि समूचा वातावरण दूषित होकर रह जाता है। इससे एक ओर सामाजिक भेदभाव उत्पन्न होता है तो दूसरी ओर जलवायु प्रदूषण जैसे संकट उत्पन्न होते हैं। जिसका नतीजा आज हम अपनी आँखों से देख रहे हैं। फिर शिक्षा और रोज़गार इत्यादि के क्षेत्र में सबको समान अवसर न मिल पाने के कारण ग़रीब और अधिक ग़रीब होता चला जाता है तथा पूँजीपति की गाँठ और अधिक मोटी व मज़बूत होती जाती है। उनकी भोग विलासितापूर्ण जीवन शैली के नतीजे में उपभोक्तावाद को बढ़ावा मिलता है। लोगों में उनकी देखा-देखी ज़रूरत से अधिक चीज़ें ख़रीदने की प्रवृत्ति जन्म लेती है। इससे पूँजीवादियों को ब्याज का कारोबार चमकाने का ख़ूब अवसर मिलता है और सामाजिक समस्याएँ विकराल रूप धारण कर लेती हैं।

इस पूरे परिदृश्य में मीडिया बहुत महत्त्वपूर्ण रोल अदा करता है। चूँकि मीडिया पूँजीवाद की कठपुतली होता है इसलिए वह उन्हीं बातों को प्रचारित और प्रसारित करता है जिनमें साम्राज्यवाद का हित होता है।

उपरोक्त परिस्थितियों को सामने रखते हुए जमाअते-इस्लामी हिन्द ने 2008 ई॰ में एक साम्राज्यवाद विरोधी अभियान चलाया था। यह अभियान उन लाखों और करोड़ों लोगों के दिल की आवाज़ थी जो इस पूँजीवादी साम्राज्य के शोषण का शिकार हैं।

इस अभियान में जहाँ एक ओर पूँजीवादी साम्राज्य के शोषण और अत्याचार के नतीजे में होनेवाली तबाहकारियों से लोगों को परिचित कराया गया था वहीं इस्लाम को वैकल्पिक व्यवस्था के रूप में पेश भी किया गया था।

इस अभियान के अवसर पर पुस्तिकाओं की एक शृंखला (Series) प्रकाशित की गई थी जिनमें पूँजीवादी साम्राज्य का विभिन्न पहलुओं से अध्ययन कर उससे होनेवाली तबाहियों को सहज रूप में प्रस्तुत किया गया था और इस्लाम को एक वैकल्पिक व्यवस्था के रूप में प्रस्तुत किया था। इन पुस्तिकाओं की महत्ता और लोकप्रियता को देखते हुए इनको पुनः प्रकाशित किया जा रहा है। चूँकि ये पुस्तिकाएँ 2008 ई॰ में लिखी गई थीं इसलिए इनमें तत्कालिक घटनाओं का उल्लेख भी कहीं-कहीं हुआ है। पाठकों से अनुरोध है कि वे इस बात का ध्यान रखें।

हमें आशा है कि ये पुस्तिकाएँ पाठकों के लिए लाभकारी सिद्ध होंगी।

हमारा पूरा प्रयास रहा है कि प्रूफ़ आदि की दृष्टि से इन पुस्तिकाओं में कोई त्रुटि न रहे। लेकिन यदि कहीं कोई त्रुटि पाई जाए तो पाठकगण हमें अवश्य सूचित करें हम उनके आभारी होंगे।

नसीम गाज़ी फ़लाही
सेक्रेट्री
इस्लामी साहित्य ट्रस्ट (दिल्ली)

पूँजीवादी साम्राज्य और सामाजिक भेदभाव

राजधानी से बबन के गाँव तक पहुँचने के लिए शायद डेढ़ घण्टे से ज़्यादा समय नहीं लगेगा, लेकिन गाँव की सरहद में दाख़िल होते ही आपको ऐसा महसूस होगा कि आपने किसी और धरती पर क़दम रख दिया है।

कई लाइनोंवाली चौड़ी सड़कें सिकुड़ते-सिकुड़ते धूल से ढकी पगडण्डियाँ बन चुकी हैं। चमचमाती कारों ने न जाने कहाँ साथ छोड़ दिया। सिर्फ़ धूल और धुआँ उड़ाते थ्री-व्हीलर ही जानवरों की तरह इनसानों को लादकर गाँव की सरहद छूने की हिम्मत जुटा पाते हैं। कुपोषण और गन्दे पानी ने गाँव को बीमारियों की प्रयोगशाला (Laboratory) बना दिया है। ज़ीरो मार्केट वैल्यू (Zero Market Value) ने डाक्टरों को भी बबन से कोसों दूर रखा है। यहाँ बच्चों से आप यह मत पूछिए कि वे किस क्लास में पढ़ते हैं। टूटे दाँतों के साथ उनकी खिलखिलाती हँसी आपके तकलीफ़देह मज़ाक़ का उनकी तरफ़ से करारा जवाब होगा।

जी हाँ! यही हमारे देश का अफ़सोसनाक मंज़रनामा (दृष्टान्त) है। यह वह बदतरीन सामाजिक असमानता और भेदभाव है जो पिछले कई सालों से हमारा भाग्य है। अफ़सोस की बात तो यह है कि यह खाई हर आनेवाले दिन और ज़्यादा व्यापक होती चली जा रही है।

सामाजिक असमानता (Social Disparity) भारत जैसे देश के लिए कोई नई बात नहीं। लेकिन पूँजीवादी साम्राज्य इस भेदभाव को जिस तेज़ी के साथ फैला रहा है वह बड़ी ही हैरत और चिन्ता की बात है।

आइए सामाजिक असमानता के पहलू से नव-पूँजीवादी साम्राज्य का अध्ययन करें।

पूँजीवादी साम्राज्य

इतिहास के हर दौर में साम्राज्यवाद नए रूप में सामने आता रहा है। कभी राजनीतिक साम्राज्य की सूरत में, कभी आर्थिक अत्याचार का रूप धारण करके और कभी मानसिक शक्ति (Mind Power) का रूप धारण करके। क़ुरआन मजीद फ़िरऔन, क़ारून और हामान को क्रमशः इन्हीं तीन साम्राज्यवादी शक्तियों के प्रतिनिधि के रूप में पेश करता है। हज़रत मूसा *(अलैहि.)* के मुक़ाबले में उनकी साम्राज्यवादी कशमकश सत्यवादियों और हक़परस्तों के लिए एक पूर्ण मार्गदर्शन है।

आज के दौर का पूँजीवादी साम्राज्य वास्तव में तत्कालीन क़ारून का साम्राज्यवादी चेहरा है। यह साम्राज्य उस सिद्धांत पर आधारित है जिसे न्यो लिबरलिज़्म (Neo Liberalism) अर्थात उदारतावाद कहा जाता है। इस विचार के कुछ महत्त्वपूर्ण पहलू निम्नलिखित हैं–

(1) **बाज़ारवाद :** व्यापार को समस्त सरकारी बन्धनों से आज़ाद कर दिया जाए। समाजी नफ़े-नुक़सान को नज़रअन्दाज़ करके व्यापार पूरे तौर पर आज़ाद हो। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए ज़्यादा खुलापन हो। आर्थिक संसाधनों और पूँजी का स्वतन्त्र रूप से प्रेषण और फैलाव हो। चीज़ों की क़ीमतों पर कोई कंट्रोल न हो। कर्मचारी यूनियनों की कमर तोड़ना और मुआवज़े के सख़्त उसूल इस विचारधारा की विशेषता है।

(2) **डीरेगूलेशन :** सरकार के ऐसे सभी क़ानूनों का ख़ात्मा हो जो व्यापार में लाभ पर असरअन्दाज़ (प्रभावी) हो सकते हों।

(3) **जनता पर होनेवाले ख़र्च में कमी :** बुनियादी समाजी ज़रूरतों के विभागों में 'सरकार की भूमिका' को कम करने के लिए ख़र्चों में कटौती हो।

(4) **निजिकरण (Privatisation) :** सरकारी संस्थाओं, सरकारी जायदादों और सेवाओं को बेचकर उनका निजिकरण कर दिया जाए।

साधारणतः सरकारी विभागों की कार्यक्षमता को बढ़ाने के नाम पर सरकारी संस्थाओं की निजिकारी की जाती है।

इन नवपूँजीवादी रुझानों को अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संस्थाओं की सहायता से विकासशील देशों पर थोपा जाता है, जिसका शिकार हमारा देश भी है। इस पूँजीवादी अवधारणा से लाभ उठानेवालों की संख्या आटे में नमक के बराबर होती है और आबादी की एक बड़ी संख्या इस बेचैनी को झेल रही है। इस सख़्त मुनाफ़ाख़ोर रुझान के कारण उनके हिस्से में शोषण और मुसीबतों के ढेर के बदले मामूली मुआवज़ा आता है।

सामाजिक भेदभाव

समाज के विभिन्न वर्गों में संसाधनों, अधिकारों, छूट और अनुदानों के अन्यायपूर्ण तथा असन्तुलित विभाजन की वजह से पैदा होनेवाली असमानता ही वास्तव में 'सामाजिक भेदभाव' कहलाता है।

मेहनत और योग्यता की बुनियाद पर संसाधनों और अधिकारों में कमी या ज़्यादती सभ्य और सुसंस्कृत समाज में भी एक स्वाभाविक बात है। लेकिन अगर इस विभेद का कारण अधिकारों का हनन, लूट-खसोट और नाइनसाफ़ी हो तो यह बदतरीन बेचैनी और असंख्य समाजी समस्याओं का कारण बनती है। पूँजीवादी साम्राज्य इसी समाजी भेदभाव को फैलाता है।

समाज-शास्त्रियों के अनुसार सामाजिक भेदभाव को मापा भी जा सकता है। समाजी भेदभाव का Socio Economic Scale (SES) के ज़रीए से हिसाब लगाया जा सकता है। इसके ज़रीए से इस बात का अन्दाज़ा लगाया जाता है कि कोई व्यक्ति या समुदाय उसी समाज के दूसरे व्यक्तियों या ग्रुपों के मुक़ाबले में किस स्थान पर खड़ा है। इस पैमाइश से तीन बातें मालूम की जा सकती हैं—

(1) आर्थिक स्थिति (Economic Status)

(2) शैक्षणिक स्थिति (Educational Status)

(3) व्यावसायिक स्तर (Occupational Status)

शताब्दियों से चली आ रही समाजी अवधारणाओं के कारण भारत के उच्च वर्ग के मुक़ाबले में पिछड़े वर्ग का औसत SES स्कोर बहुत ही कमज़ोर है। अब नवपूँजीवादी साम्राज्य की अवधारणा के कारण SES स्कोर का यह अन्तर और अधिक गहरा होता जा रहा है।

SES की बुनियाद पर समाज-शस्त्रियों ने समाज को निम्नलिखित हिस्सों में विभाजित किया हैं :

उच्च वर्ग (Upper Class) : उच्च (Executives), सम्मानित और प्रतिष्ठित (Celebrities), उच्च राजनीतिज्ञ और पूँजीवादी (Upper Class Politicions)।

उच्च-मध्यम वर्ग (Upper Middle Class) : उच्च शिक्षित प्रोफ़ेशनल्स, सरकारी अधिकारी और बड़े व्यापारी आदि।

निम्न-मध्यम वर्ग (Lower Middle Class) : सेमी प्रोफ़ेशनल्स (मध्य श्रेणी के शिक्षित लोग) और छोटे व्यापारी।

कर्मचारी वर्ग (Working Class) : मेहनत करनेवाला शिक्षित मज़दूर वर्ग।

ग़रीब वर्ग (Poor Class) : साधारण मज़दूर वर्ग या निम्न आय वाले लोग।

पश्चिमी समाज के परिप्रेक्ष्य में किए जानेवाले शोध भारतीय समाज को पूर्ण रूप से प्रतिबिम्बित नहीं करते। हमारे देश में इस विभेद में जातीय भेदभाव भी एक महत्त्वपूर्ण रोल अदा करता है। इससे भी अधिक यह कि हमारे सामाजिक भेदभाव की गहराइयाँ एक और वर्ग (Section) की वृद्धि करती है, जिसे हम Below Poverty Line (ग़रीबी रेखा के नीचे का) Group (BPL) कहते हैं। भारत में आबाद एक बड़ी संख्या का सम्बन्ध इसी BPL से है। ये वे लोग हैं जिनकी आय का

लगभग 70 प्रतिशत भाग केवल खाने-पीने की बुनियादी ज़रूरतों को हासिल करने के लिए ख़र्च होता है। दुर्भाग्य यह है कि वे अपनी खाने-पीने की बुनियादी ज़रूरतों को भी पूरा नहीं कर पाते। योजना आयोग (Planning Comission) के अनुसार एक साधारण भारतीय नागरिक के खाने-पीने की ज़रूरत (2100 Calories) को पूरा करने के लिए 650 gms अनाज की आवश्यकता होती है, इसी के मासिक मूल्य के आधार पर ग़रीबी रेखा (Poverty Line) तय की जाती है। अर्थात आबादी की एक बड़ी संख्या 650 ग्राम अनाज की थोड़ी-सी मात्रा से भी वंचित होती है। यह हालत हमारे समाज की एक संगीन सूरते-हाल को सामने रखती है।

सामाजिक भेदभाव की वजह से दो परस्पर विरोधी समाज एक ही देश में पैदा हो रहे हैं; जो एक-दूसरे के लिए बिलकुल ही अजनबी बनते जा रहे हैं। पसन्द, प्राथमिकताएँ, ज़रूरतें, कल्चर, सामाजिक और आर्थिक स्तर, यहाँ तक कि हर मामले में एक खुला फ़र्क़ नज़र आता है। आशंका यह है कि विभेद और फ़र्क़ की इस खाई को अगर समय रहते समझा न गया तो इसे पाटना और इसके ज़रीए से फैल रही समाजी बेचैनी को दूर करना भी सम्भव न होगा।

सामाजिक असमानता के कारण

सरकारी पॉलीसियाँ

जिन लोगों के हाथ में सत्ता की बागडोर होती है उनसे यह उम्मीद की जाती है कि वे आम लोगों के लिए शिक्षा, रोज़गार इत्यादि के क्षेत्र में समान अवसर जुटाने को यक़ीनी बनाएँगे। लेकिन पूँजीवादी अर्थव्यवस्था और अन्तर्राष्ट्रीय साम्राज्यवादी दबाव के नतीजे में आम तौर से हमारे देश के पॉलीसी बनानेवाली संस्थाओं का रुझान ग़रीब-विरोधी और पूँजीपतियों का पोषक रहा है। सरकारी संस्थाओं ने आम लोगों को कहने को तो राजनीतिक अधिकार दे रखे हैं लेकिन आर्थिक अधिकारों से व्यवहारतः वंचित कर रखा है। देश के आम लोगों की बदतरीन ग़रीबी और उनको अधिकारों से वंचित रखा जाना हमारे देश के राजनीतिज्ञों की नाकामियों को दर्शाता है। इस रवैये को कभी माफ़ नहीं किया जा सकता।

सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री अमित बहादुरी ने सरकारी पॉलीसियों की इन्हीं नाकामियों का उल्लेख अपनी किताब Development with Dignity में किया है।

उनके अनुसार तरक़्क़ी (Development) सिर्फ़ ऊँची विकास दर (Growth Rate) का नाम नहीं बल्कि विकास (Growth) और उसके प्रभावों के न्यायपूर्ण विभाजन का नाम है। जिसमें किसी पक्षपात (Prejudice) और भेदभाव (Discrimination) का कोई दख़ल न हो। पैदावार को बढ़ा देना ग़रीबी के ख़ात्मे की कोई अनिवार्य शर्त नहीं है और न ही Growth कोई ऐसा अमल है जिसका समाज से कोई सम्बन्ध न हो। Socially Neutral अर्थात सामाजिक रूप से तटस्थता और उदासीनता पूँजीवादी समर्थक पॉलीसियों का ही नतीजा है कि दुनिया की 80 प्रतिशत आबादी (भारत भी उनमें शामिल है) तेज़ी से बढ़ती हुई सामाजिक असमानता और भेदभाव की पीड़ा का शिकार है।

The Observer (April, 28-2002) के अनुसार अमरीकी समाज तेज़ी से बटता (Polarized) जा रहा है और इस समय पश्चिमी समाज

दुनिया का सबसे ज़्यादा असमानता का शिकार समाज (Unequal Society) बन चुका है। यह वह समाज है जो पूँजीवादी साम्राज्य का अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का लीडर है। पूँजीवादी पॉलीसियाँ जब अमेरिकी समाज को इतना Polarised किए देती हैं तो हम बहुत अच्छी तरह समझ सकते हैं कि अगर आँखें मूँद कर हमारा देश भी इस राह पर चल पड़ेगा तो आनेवाले दिनों में यह असमानता और भेदभाव हमारे समाज में क्या कुछ क़हर ढा सकता है।

एम॰ एन॰ सीज़ (MNCs) कल्चर

अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनियाँ और व्यापारिक संस्थाएँ (MNCs) अपनी आक्रामक व्यापारिक नीतियों और कार्य-पद्धति के ज़रीए से इनसानी समाज को बाँटकर सामाजिक असमानता और भेदभाव पैदा करने में महत्त्वपूर्ण रोल अदा करती हैं। अफ़्रीक़ा और लातिन अमेरिका में इन कम्पनियों ने सामाजिक असमानता और भेदभाव का जो क़हर बरपा किया वह मानव-इतिहास का एक कटु अंश है। अब इन कम्पनियों की दया-दृष्टि भारत और दूसरे विकासशील देशों और वहाँ की अर्थव्यवस्था पर है। यही कारण है कि भारत बढ़ते हुए सामाजिक असमानता और भेदभाव के सन्दर्भ में अब अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक मुख्य स्थान पा चुका है।

अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनियाँ इस असमानता और भेदभाव का एक महत्त्वपूर्ण कारण हैं। लेकिन पूँजीवादी साम्राज्य इस साधन का किस प्रकार इस्तेमाल करता है, अगले पृष्ठों में हम इसी बात पर प्रकाश डालेंगे।

उपभोक्तावाद (Consumerism)

अमरीकी विद्वान लूइस बर्नेज़ ने, जिसके विचारों को Opinion Molding या Engineering of Consent कहा जाता है, अमरीकी कम्पनियों के सामने इस प्रकार के विचार प्रस्तुत किए कि आम लोगों के रुझानों और विचारों को किस तरह प्रभावित किया जाए कि लोग उन चीज़ों की तलब और चाहत महसूस करने लगें जिनकी उन्हें कोई

ज़रूरत न हो। बर्नेज़ को नवीन उपभोक्तावाद का आर्किटेक्ट भी कहा जाता है। इसी उपभोक्तावादी विचारधारा ने विकसित होकर मौजूदा उपभोक्तावादी कल्चर को जन्म दिया। कन्ज़्यूमरिज़्म इनसानी समाज में यह सोच फैलाता है कि समाज का आर्थिक विकास इस बात पर निर्भर है कि चीज़ों की ज़्यादा से ज़्यादा ख़रीदारी की जाए और इसके लिए बेपनाह ख़र्च किया जाए। अतः उपभोक्तावादी सोच के अधीन परवान चढ़नेवाले देश के समाज में भी आम तौर पर लोगों के सोचने का अन्दाज़ यही होता है। वे अपनी गाड़ियों के ब्राण्ड्स और अलमारियों में तह पर तह रखे हुए कपड़ों के ढेर जमा करके दिली सुकून हासिल करते हैं। पार्टियों में पेश की जानेवाली एक के बाद एक डिशों की तादाद उनका 'समाजी दर्जा' तय करती है।

सोचने का यह वह अन्दाज़ है जो पूँजीवादी सोच का लाज़िमी नतीजा है। पूँजिवादी समाज आज भौतिकवाद के अज़ाब को झेल रहा है। आम लोगों की उपभोक्तावादी सोच हर साल करोड़ों टन कचरे का कारण बनती है, जिसे ठिकाने लगाने का कोई रास्ता भी इन्हें सुझाई नहीं देता। भौतिकतापूर्ण पूँजीवादी संस्कृति के निकट उपभोक्ता की पसन्द और नापसन्द ही आर्थिक ढाँचे की बुनियाद है। यही कारण है कि कम्पनियाँ अपने उत्पादनों (Products) को ख़रीदार की पहली पसन्द बनाने के लिए हर प्रकार के हथकण्डे अपनाती हैं। इन हथकण्डों में महँगे-महँगे विज्ञापनों से लेकर ब्राण्ड एम्बेस्डर्स की सेवाएँ और अनैतिक तरीक़े भी शामिल हैं। इसका नतीजा यह होता है कि बहुत-सी ज़रूरी चीज़ें (Products) मार्केट में आने और लोगों की पहली पसन्द की लिस्ट में शामिल होने से रह जाती हैं और आम लोगों की पहुँच (Approach) से बाहर हो जाती हैं। इसी उपभोक्तावादी सोच के कारण दुनिया की 20 प्रतिशत ख़ुशहाल आबादी कुल संसाधनों का 82 प्रतिशत इस्तेमाल करती है। जबकि 20 प्रतिशत अत्यन्त ग़रीब आबादी मात्र 5 प्रतिशत संसाधनों को ही हासिल कर पाती है।

आइए अपने समाज में बढ़ते उपभोक्तावाद की कुछ परस्पर विरोधी झलकियाँ देखें।

• मुम्बई में 24 मनोरंजन पार्क (Amusement Parks) हैं, जहाँ रोज़ाना 50 बिलयन लीटर पानी इस्तेमाल होता है। इसी शहर मुम्बई में कई पिछड़ी बस्तियाँ पानी की कमी का शिकार हैं, जहाँ एक व्यक्ति को मुश्किल से 40 लीटर पानी हासिल हो पाता है।

• जयपुर में कई गोल्फ़ कोर्सेज़ निर्माणाधीन हैं। एक गोल्फ़ कोर्स के लिए 18 से 23 लाख लीटर पानी की रोज़ाना ज़रूरत पड़ती है। वहीं दूसरी ओर राजस्थान के ग्रामीण इलाक़े पानी की कमी के शिकार हैं। अगर गोल्फ़ कोर्स में इस्तेमाल होनेवाले पानी को ग्रामीण इलाक़ों में सप्लाई कर दिया जाए तो लगभग एक लाख ग्रामीणों की ज़रूरत के लिए काफ़ी होगा।

उपयोगी वस्तुओं (Commodities) से कुछ दिन दिल बहलाकर आख़िर उन्हें कचरे के ढेर में फेंकना और थोड़ी देर के इस तमाशे के लिए अपनी सारी शक्ति और ऊर्जा को निचोड़कर पूँजीवादी साम्राज्य को सौंप देना भला कौन-सी अक़्लमन्दी है? बे-अक़्ली की इसी सामूहिक कैफ़ियत को समाजशास्त्री समाजी आत्महत्या (Societal Suicide) का नाम देते हैं। दुर्भाग्य से हमारे समाज का अच्छा-ख़ासा वर्ग इसी रास्ते की ओर बढ़ रहा है।

हो सकता है कि समाज में अमीर-ग़रीब की सोच, दिलचस्पी और प्राथमिकताओं (Intrests and Priorities) में असमानता पूँजीपतियों के लिए कोई महत्त्व न रखती हो लेकिन यहाँ का सोचने-समझनेवाला वर्ग भी शतुर्मुर्ग़ की चाल चले तो यह स्थिति पूरे समाज के लिए हानिकारक हो सकती है।

फ़िरक़ापरस्ती और साम्प्रदायिकता (Communalism)

प्राचीन रोमन संस्कृति के इतिहास में ग़ुलामों की ख़ूँरेज़ लड़ाइयों से आनन्द लेने जैसी अमानवीय घटनाएँ मिलती हैं, जहाँ सूखे और

आपदाओं से बिलबिलाते लोगों को क़त्ल व ख़ून के खेल में इस तरह मग्न कर दिया जाता था कि वे भूख की तकलीफ़ से भी बेपरवा हो जाते थे।

आजकल पूँजीवादी मानसिकता भी ठीक उन्हीं हथकण्डों को अपनाने से नहीं चूक रही है। हमारे देश में भी एक मज़बूत पूँजीवादी लॉबी वैश्विक साम्राज्य की समर्थक और उसके लाभों की संरक्षक दिखाई देती है। वैश्विक साम्राज्य के देसी नुमाइन्दे भी राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में वही हथकण्डे अपनाते हैं जो अन्तर्राष्ट्रीय साम्राज्य की पहचान हैं। उन्हीं में से एक हथियार फ़िरक़ापरस्ती और साम्प्रदायिकता (Communalism) है।

एक अध्ययन (Study) के अनुसार गुजरात क़त्ले-आम (2002 ई॰) के अधिकतर उपद्रवी और फ़सादी वे मज़दूर थे जो रोज़गार से महरूम हो चुके थे और उनकी मानसिक निराशा (Mental Frustation) को क़त्ल व ग़ारतगरी की तरफ़ मोड़ दिया गया।

बेरोज़गार नौजवानों को रथ यात्राओं में उलझाकर उन्हें समाज के असूल इशूज़ और मुद्दों से हटाना, उनकी धार्मिक भावनाओं को भड़काकर राजनीतिक और आर्थिक लाभ हासिल करना तथा वर्गीय भेदभाव, कशमकश और फ़िरक़ापरस्ती के सहारे आम लोगों को एक-दूसरे के ख़िलाफ़ उकसाकर पूँजीवादी हितों का संरक्षण और निगहबानी करना देश की पूँजीवादी शक्तियों की कामयाब नीति (Strategy) रही है, जिसके ज़रीए से वे समाज में फूट पैदा करके पूँजीवादी वर्गों के राजनीतिक और आर्थिक हितों को सुरक्षा प्रदान करते हैं। अगर देश के तीन बड़े पूँजीपतियों की ओर से एक ख़ूँख़ार राजनीतिज्ञ को प्रधानमन्त्री बनाए जाने का प्रस्ताव बेलाग तौर से आता है तो इसमें हैरत की कोई बात नहीं है!

सामाजिक असमानता और भेदभाव के नवसाम्राज्यवादी साधन

एम॰ एन॰ सीज़

आम तौर पर समझा जाता है कि तरक़्क़ी की दौड़ में जो लोग आगे नहीं बढ़ पाए वे ग़रीब रह गए। यह एक ग़लत और काल्पनिक बात है। आज ग़रीब वह नहीं है जो तरक़्क़ी की दौड़ में पीछे रह गया, बल्कि वास्तव में ग़रीब वह है जो लूट-खसोट का शिकार हो गया। सच बात यह है कि उत्तरी अमरीका और यूरोप की दौलत एशिया, अफ़्रीक़ा और लेटिन अमरीका की लूट का नतीजा है। तीसरी दुनिया पर किया जा रहा आर्थिक हमला ही अमीर देशों की ख़ुशहाली का कारण है। आर्थिक लूट और असमानता के लिए नवपूँजिवादी साम्राज्य का सबसे प्रभावी हथियार मल्टी नेशनल कॉरपोरेशन्स (MNCs) हैं।

आज MNCs व्यवहारतः भारत सहित अधिकतर देशों के संसाधनों पर क़ाबिज़ हो चुकी हैं। इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका ने MNCs की परिभाषा कुछ इस प्रकार दी है–

> "वह कॉरपोरेशन जो एक समय में एक से अधिक देशों में रजिस्टर्ड हो और काम कर रहा हो।"

संक्षेप में यह कि मल्टी नेशनल कम्पनियाँ लाभ पहुँचानेवाली वे संस्थाएँ हैं जो क्रय-विक्रय, मार्किटिंग, प्राकृतिक संसाधनों की निकासी, पैदावार, शोध और खोज सहित समस्त व्यापारिक गतिविधियाँ एक से अधिक देशों में अंजाम देती हैं और जिनके प्रबन्ध से सम्बन्ध रखनेवाले फ़ैसले आम तौर से क्षेत्रीय और इलाक़ाई तब्दीलियों पर निर्भर होते हैं।

सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ में यूरोपीय देशों (विशेष रूप से

इंग्लैण्ड और हॉलैण्ड) ने अपने साम्राज्यवादी उद्देश्यों को व्यापारिक रास्तों से हक़ीक़त का रूप देने के लिए ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया ट्रेडिंग कम्पनी और डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी (1602 ई॰) जैसी कॉरपोरेशन स्थापित कीं। इनका कार्य-क्षेत्र ऐशिया, अफ़्रीक़ा और अमरीका के कई देशों पर फैला हुआ था। इन्हें मौजूदा MNCs का आरम्भिक रूप कहा जा सकता है। लेकिन मल्टी नेशनल कॉरपोरेशन का मौजूदा सूरत में क्रमवार प्रदर्शन उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ। यह वह दौर था जब औद्योगिक पूँजीवाद (Industrial Capitalism) निरन्तर तरक़्क़ी पा रहा था।

प्राकृतिक संसाधनों को तेज़ी के साथ इस्तेमाल करने योग्य उपयोगी वस्तुओं की शक्ल में ढालना उनके ज़्यादा समय तक इस्तेमाल करने के लिए जमा रखने या संचय के लिए उन्नत उपाय ढूँढना तथा स्थानान्तरण के तेज़ से तेज़ साधन खोज निकालना वे लक्ष्य थे जिनके कारण संगठित कम्पनियाँ संगठित तथा व्यवस्थित रूप खोजने के लिए मजबूर हुईं। परिणामस्वरूप मौजूदा MNCs वुजूद में आईं। आज कुल 62,000 मल्टी नेशनल कम्पनियाँ अपनी 9,00,000 (नौ लाख) सम्बन्धित कम्पनियों (Affiliates) के माध्यम से अधिकतर संसाधनों को कन्ट्रोल करती हैं।

अच्छी क्वालिटी, सख़्त मेहनत, ऊँचे-ऊँचे Incentives, आकर्षक वेतन, तेज़ वर्क कल्चर, प्रोफ़ेशनलिज़्म, मुसाबिक़त (एक-दूसरे से आगे बढ़ जाने की होड़) और Outsourcing इन कम्पनियों की कुछ विशेषताएँ हैं। लेकिन इसके साथ-साथ बदतरीन पूँजीवादी हथकण्डे इनके व्यापार का सबसे महत्त्वपूर्ण हिस्सा माना जाता है।

सम्बन्धित मैदान में मौजूद छोटी कम्पनियों को अपनी आक्रामक नीतियों के द्वारा ढेर कर देना और आख़िरकार उन्हें अपने में मिलाकर ख़त्म कर देना MNCs की पुरानी रिवायत रही है। आज हर क्षेत्र की सिर्फ़ उसी कम्पनी के मैदान में टिके रहने की उम्मीद रहती है जो इस मैदान में सुपर पावर का दर्जा रखती है। छोटी कम्पनियों को, जिनका

सीधा मुक़ाबला सम्बन्धित MNCs से हो, बहुत ही जल्द रास्ते से हटा दिया जाता है। अलबत्ता जो कम्पनियाँ MNCs की आंशिक ज़रूरतों को पूरा करने के लिए क़ायम की गई हों वे फलती-फूलती रहती हैं।

माइक्रोसॉफ़्ट ने पहले Hotmail को ख़रीद लिया अब Yahoo को ख़रीदने की तैयारी कर रही है। Oracle Corporation ने थोड़े समय में ही 10 से ज़्यादा कम्पनियों का अपने में विलय कर लिया। Google ने Orkut और Youtube जैसे प्रसिद्ध डोमेंस को ख़रीद लिया। हमारे देश में रिलायंस ने सब्ज़ी बेचनेवालों और मेवा बेचनेवालों का जीना दूभर कर दिया। रिलायंस फ्रेश की दुकानों पर मध्य प्रदेश और हरियाणा के सब्ज़ी बेचनेवालों का ग़ुस्सा बुद्धिसंगत ही है।

MNCs बनावटी (Artificial) ज़रूरत पैदा करके आम लोगों की जेबों को लूटने का हुनर ख़ूब जानती हैं। मार्केटिंग मैनेजर्स और व्यापारिक आँकलनकर्ताओं (Business Analysts) की टीमें निरन्तर आम लोगों की मानसिकता, बदलते हुए रुझान (Trends) और उनकी कमज़ोरियों का इस उद्देश्य से आँकलन करने में जुटी रहती हैं कि कैसे उनके कमज़ोर पहलुओं के द्वारा कृत्रिम ज़रूरतें पैदा की जाएँ और उनको पूरा करने के लिए उत्पादन किया जाए और उन उत्पादनों से लाभ कमाया जाए। अतः पिछले दस सालों में हमारे देश में बनावटी ज़रूरतों की एक बाढ़ आ चुकी है। कॉस्मेटिक्स, इलेक्ट्रॉनिक गैडगेट्स, प्रॉसेसीड खाने-पीने की चीजें, ऐश व आराम के सामान, सॉफ़्ट ड्रिंक्स, इश्तिहारी दवाइयाँ, ग़ैर-ज़रूरी कोर्सेज़, ग्रीटिंग कार्ड्स, क्रेडिट कार्ड्स आदि सूची के अनुसार सेंकड़ों ग़ैर-ज़रूरी ब्राण्ड्स की सूरत में कई फ़िज़ूल चीज़ें मार्केट में उबल रही हैं और आक्रामक इश्तिहारबाज़ी के ज़रीए से आम लोगों को इन्हें ख़रीदने के लिए मजबूर किया जा रहा है।

आम लोगों की भावनाओं के शोषण के लिए ब्राण्ड एम्बेस्डर्स की सेवाएँ लेना यहाँ आम बात है। आसमान छूते होर्डिंग्स अपनी तैयारी के मरहले से नष्ट होने तक माहौल और वातावरण पर क्या ग़ज़ब ढाती हैं,

यह बात ख़ुद एक ख़ामोश दास्तान है। संयुक्त हितों (विशेषतः नफ़ाख़ोरी) के लिए MNCs का आपसी सहयोग और बड़ी शक्तियों और सरकारों को अपना समर्थक और सहयोगी बनाकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर डिप्लोमेसी उनकी कार्य-पद्धति का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। WTO और GATT जैसे अन्तर्राष्ट्रीय फ़ोरम्स में यह चीज़ खुले तौर पर देखी जा सकती है। दुनिया की महत्त्वपूर्ण MNCs हितों की प्राप्ति के लिए कितनी तेज़ी से एक-दूसरे के क़रीब आती हैं निम्नलिखित Transnational Network ख़ाके से पूर्णतः स्पष्ट होता है

यहाँ यह बात स्पष्ट होती है कि अधिकतर महत्त्वपूर्ण MNCs के डायरेक्टर्स संयुक्त रूप से एक-दूसरे के कारोबार में शामिल और सहयोगी हैं और इस तरह उनमें आपसी हितों के संरक्षण और उनकी निगहदाश्त का एक सफल मेकानिज़्म पाया जाता है। ये वे तमाम रास्ते हैं जिनके ज़रीए से पूँजीवादी साम्राज्य MNC राज का इस्तेमाल करते हुए न सिर्फ़ आम लोगों का ख़ून चूस रहा है, बल्कि उन्हें वर्गों में बाँटकर एक स्थाई वर्ग-संघर्ष के रास्ते खोल रहा है।

अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संस्थाएँ (WTO/WB/IMF आदि)

GATT/IMF/WTO और विश्व बैंक आदि अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ पूँजीवादी साम्राज्य के मज़बूत हथियार माने जाते हैं। दुनिया की अत्यन्त शक्तिशाली वित्तीय संस्थाएँ कुछ कम या ज़्यादा लगभग पूरी दुनिया के आर्थिक मामलों में न केवल दख़ल दे रही हैं, बल्कि हर देश की आर्थिक प्राथमिकताएँ (Economical Priorities), तरक़्क़ीयाती प्रोजेक्ट्स और समस्त आर्थिक फ़ैसलों में बड़ा महत्त्वपूर्ण रोल अदा करते हैं। इनमें से हर संस्था एक महत्त्वपूर्ण वित्तीय-शक्ति है और इनसे कई दूसरी संस्थाएँ जुड़ी हुई हैं। दूसरे शब्दों में यह आर्थिक संस्थाओं का एक जाल है जो दुनिया की अर्थ-व्यवस्था का रुख़ तय करता है।

कहने को इन संस्थाओं के उद्देश्य बड़े व्यापक नज़र आते हैं, ग़रीबी का ख़ातिमा और ग़रीब देशों की तरक़्क़ी और कल्याण उनके उद्देश्यों से झलकती है। लेकिन वास्तव में ये संस्थाएँ पूँजीवादी साम्राज्य के वर्चस्व और उनके हितों की निगहबानी और संरक्षण का दूसरा नाम हैं। इन संस्थाओं का इतिहास और इनके काम करने के तरीक़ों से निम्नलिखित वास्तविकताएँ स्पष्ट होती हैं–

- इन संस्थाओं की दिलचस्पी वास्तव में तरक़्क़ी के प्रोजेक्टों में नहीं होती, बल्कि वे प्रोजेक्ट्स जो फ़ायदेमन्द हों और जिनसे क़र्ज़ और सूद (ब्याज) की पूरी-पूरी अदायगी यक़ीनी हो, उनकी दया-दृष्टि का केन्द्र होते हैं। दूसरे शब्दों में अधिक से अधिक लाभ उठाना ही इनका असूल मक़सद होता है।

- विश्व बैंक और उससे जुड़ी हुई तमाम संस्थाओं पर सीधे तौर पर अमरीका का ही कंट्रोल होता है। विश्व बैंक पर विधिवत रूप से अमरीका को वर्चस्व प्राप्त है।

- क़र्ज और सहायता के लिए विकासशील देशों को इन संस्थाओं की कई बेजा शर्तें माननी पड़ती हैं। उनके निकट तरक़्क़ी का वही फ़ार्मूला कामयाब है जिसे पश्चिमी (पूँजीवादी) ताक़तें स्वीकार करती हों।

लिब्रलाइज़ेशन अर्थात उदारतावाद को एक विचारधारा की हैसियत से पश्चिमी विचारकों ने ज़रूर परिचित कराया लेकिन इसको अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर लागू और क्रियान्वित करने का ज़रीआ यही वित्तीय संस्थाएँ रही हैं। ट्रेड लिब्रलाइज़ेशन के इस अमल को अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ Structural Adjustment जैसे ख़ूबसूरत नामों से लागू करवाती हैं। खेती का वैश्वीकरण (Globolisation of Farming) आख़िरकार भारत में हज़ारों किसानों के नुक़सान का कारण बना और साथ ही यह खेती में नई-नई चीज़ें उगाने तथा भारत की संस्कृति के ख़ातिमे का ज़रीआ भी। इसी वैश्वीकरण ने कॉरपोरेट्स की खेती के मैदान में ज़ालिमाना

दख़लअन्दाज़ी के रास्ते खोले जिससे किसानों के अधिकारों और उनके हुक़ूक़ का ख़ात्मा हो गया। किसानों के दीवालियेपन का कारण होने की वजह से खेती के मैदान में ग्लोबल फ्री ट्रेड को दुनिया का सबसे बड़ा पनाहगुज़ीं पैदा करनेवाला प्रोग्राम माना जाता है।

Trade Related Intellectual Property Rights वर्ल्ड ट्रेड ऑर्गेनाइज़ेशन का एक बहुत ही अच्छा और प्रभावकारी हथियार है जिसके ज़रीए से ग़रीब देशों की व्यापारिक क्षमता को अपंग बनाने की कोशिश की जाती है।

अमरीका दूसरे देशों की खोजों और शोध-कार्यों और उनके Patent अधिकारों को कभी कोई हैसियत नहीं देता। जबकि उन देशों में उसने सदियों से चली आ रही चीज़ों और फ़ार्मूलों को पेटेन्ट करवाकर विकासशील देशों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के दरवाज़े बन्द करवा दिए।

अमरीका का Patent Act (1952) पूरी दुनिया के साथ एक बदतरीन मज़ाक़ ही कहा जा सकता है, जो अमरीका में पैदा होनेवाली या उत्पादित किसी भी चीज़ के पेटेन्ट की इजाज़त नहीं देता। ज़बकि दूसरे देशों में प्रचलित चीज़ों या खोजों को अमरीका में Patent करवाने का अधिकार देता है। इसी अनोखे क़ानून के अनुसार विशुद्ध भारतीय बासमती चावल और हल्दी को भी पेटेन्ट करवाकर अमरीकी कम्पनियाँ इनके अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के दरवाज़े दूसरों के लिए बन्द किए देती हैं। एक अमरीकी कम्पनी के लिए यह सम्भव है कि वह भारत में उगनेवाले बासमती को ख़रीदकर भारतियों को ही बेचे लेकिन भारतीय किसान को यह अधिकार नहीं होगा कि वह अपनी पैदावार को ख़ुद बेच सकें। फिर यह भी कि इसी ट्रेड एक्ट के एक ख़ास अनुच्छेद 301 के अनुसार अमरीकी सरकार इस बात का अधिकार रखती है कि वह दूसरे देशों को अमरीकी पेटेन्ट क़ानून को मानने पर मजबूर करे। यह मात्र एक आम क़ानूनी अधिकर नहीं है बल्कि यह वह क़ानूनी आदेश है जिस पर

अमरीकी सरकारें WTO की मदद से पूरी 'दियानतदारी' के साथ काम कर रही हैं।

Uruguay Round– GATT के दौरान अमरीका ने अपने इसी पेटेन्ट क़ानून को WTO में न सिर्फ़ परिचित कराया बल्कि व्यवहारतः दुनियाभर में लागू करने में कामयाबी भी हासिल की। पेटेन्ट और इन्टेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स ने दुनिया में ज़ुल्म की एक हास्यास्पद शक्ल को परिचित कराया। अब इन क़ानूनों के अनुसार किसान की बुनियादी ज़रूरतें (अर्थात बीज) भी कॉरपोरेट मिल्कियत घोषित की गई हैं। अगर किसान इन्हें अपनी ज़रूरत के लिए बचाता है तो वह 'चोर' कहलाता है। दुनिया से इस 'चोरी' के ख़ात्मे के लिए कम्पनियाँ पेशेवर जासूसों की मदद से चोरों का पता लगातीं, उनका पीछा करतीं और उनको उचित दण्ड दिलवाती हैं।

सॉफ़्टवेयर पायरेसी और फ़िल्म पायरेसी हमारे लिए नए शब्द नहीं हैं। इसलिए कि पायरेसी की इस तरह की मार पूँजीवादी पर पड़ती है। इसलिए यह एक बड़ा गुनाह कहलाता है। लेकिन एक और पायरेसी जिसके आयाम (Volume) का अन्दाज़ा भी लगाना मुश्किल है, वह है बायो-पायरेसी।

स्थानीय पैदावार और स्थानीय शिक्षा को पेटेन्ट के ज़रीए से अपनी खोज घोषित करके इसमें बिना किसी को साझी किए तुरन्त इसके तमाम मालिकाना हुक़ूक़ हासिल कर लेने का नाम बायोपायरेसी है। पायरेसी की यह वह क़िस्म है जिसकी सबसे ज़्यादा ज़रूरत है। लेकिन जिसका ज़िक्र कभी भूले से ही होता है। कई MNCs ने अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के सहयोग से इस पायरेसी का बाज़ार गर्म कर रखा है।

विकासशील देश के साथ यह वह घिनावना मज़ाक़ है जिसके सहारे पिछले कुछ सालों में सिर्फ़ बासमती चावल और हल्दी ही नहीं बल्कि करेला, जामुन और बैगन को मधुमेह नाशक (Diabetes Killer) की

हैसियत से अमेरीका में पेटेन्ट करवा दिया गया। इसके अतिरिक्त नीम, आँवला, अदरक सहित कई दूसरी चीज़ें और इनके सारतत्व पेटेन्ट होते जा रहे हैं और धीरे-धीरे इनके व्यापार के दरवाज़े चारों ओर अन्तर्राष्ट्रीय क़ौमों पर बन्द हो रहे हैं।

पेटेन्ट क़ानून और दबाव पर आधारित पॉलीसियों के ज़रीए से आम लोगों को गुलाम बनाया जाता है जबकि क़र्ज़ और सूदी जाल के ज़रीए से सरकारों को। इन संस्थाओं की पॉलीसियों की वजह से विकासशील देशों में जो संयुक्त समस्याएँ उभर रही हैं उनकी एक लम्बी लिस्ट है।

उदाहरण के लिए बुनियादी ज़रूरतों (जन-स्वास्थ्य और शिक्षा) पर सरकारी ख़र्चों में लगातार कमी का रुझान, खाने-पीने की चीज़ों में दी जानेवाली छूट में कटौतियाँ, असंगठित विभागों में लगातार कम होती मज़दूरी, आयात (Import) को सस्ता बनाने के लिए डालर के मुक़ाबले करेंसियों की घटती क़ीमतें, मँहगाई की मार, मक़ामी ज़रूरतों के बजाय अन्तर्राष्ट्रीय 'ज़रूरतों' (निर्यात हेतु) को तरजीह देने का रुझान और बढ़ता ब्याज दर आदि।

इन संस्थाओं की पॉलीसियाँ न केवल इनसानों के मूल अधिकारों का हनन करती हैं बल्कि इनसाफ़ का गला घोंटकर आर्थिक और व्यापारिक मामलों के हवाले से पूरी दुनिया के समाज को दो टुकड़ों में बाँटती हैं। अर्थात ज़ालिम और मज़लूम (Opprassors and Oppressed)।

स्पेशल इकॉनोमिक ज़ोन्स (SEZ)

SEZ (स्पेशल इकॉनोमिक ज़ोन्स) पूँजीवादी साम्राज्य का एक और हथियार है, जो समाजी भेदभाव को बढ़ाने का एक महत्वपूर्ण ज़रीआ बन चुका है। ये वे ज़ोन्स होते हैं जो अधिकतर देश के क़ानूनों से आज़ाद होते हैं, इस तरह इन ज़ोन्स में व्यवहारतः पूँजीवादी राज क़ायम होता है।

ग़रीब किसानों से उनकी ज़मीनें मामूली मुआवज़े के बदले Acquire (अधिग्रहण) करना (जो उन्हें रोज़गार के मामूली ज़रीए से भी महरूम कर दे) फिर उन्हें भारी छूट और सहूलतों के साथ अन्तर्राष्ट्रीय पूँजीवादियों के हवाले करना, जहाँ वे व्यवहारतः पूँजीवादी राज क़ायम कर दें, यही SEZ पॉलीसियों के काम करने का तरीक़ा है। बेहतरीन खेती योग्य ज़मीनें SEZ के नाम पर तेज़ी से पूँजीवादियों के सुपुर्द की जा रही हैं और यह अमल भी अपारदर्शिता और ज़ालिमाना ब्यूरोक्रेटिक तरीक़े से अंजाम पाता है।

उदाहरण के लिए मुम्बई से मात्र 100 किलोमीटर के फ़ासिले पर उरन की 35000 एकड़ क़ीमती ज़मीन रिलायंस SEZ के लिए सरकार आरक्षित करती है और स्थानीय ग़रीब ज़मीन के मालिकों को नोटिस रवाना कर दिया जाता है। अब अगर इन ग्रामीण लोगों में दम-ख़म है तो वे पूँजीवादी और राजनीतिक की ताक़त से लोहा लें। (जिसकी आम तौर से कल्पना भी नहीं की जा सकती।) या फिर ग़रीबी के दलदल में कुछ और धँसने के लिए तैयार हो जाएँ।

सिंगूर के किसानों ने इस दम-ख़म का प्रदर्शन ज़रूर किया लेकिन उन सेंकड़ों SEZs के लाखों प्रभावित लोगों का क्या होगा जिनकी आवाज़ उठने से पहले ही दबा दी गई। यही कारण है कि आलोचक इन ज़ोन्स को Special Exploitation Zone कहते हैं। अब तक मिनिस्टरी ऑफ़ कॉमर्स ने 439 स्पेशल इकोनोमिक ज़ोन्स मंज़ूर कर दिए हैं जो व्यवहारतः Foreign Territories का दर्जा रखते हैं।

पंचायत एक्सटेंशन टू शिड्यूल्ड एरियाज़ (PESA Act 1996) हुकूमत को ज़मीन पर क़ब्ज़े हासिल करने से पहले ग्राम सभाओं की मंज़ूरी के लिए पाबन्द करता है। लेकिन हमारे देश की सरकारों ने अब तक इस क़ानून की अनदेखी ही की है। बल्कि ग्राम सभाओं की मीटिंगों को पुलिस के ज़रीए से मजबूर किया जाता है कि वे सरकारी आदेश को

मान लें। SEZ से सम्बन्धित सरकारों के ये दावे होते हैं कि बड़े पैमाने पर रोज़गार का कारण बनेंगे, लेकिन रोज़गार की स्थिति और शोषण आम तौर पर इन दावों को ग़लत साबित करते हैं। उदाहरण के लिए मद्रास एक्सपोर्ट प्रोसेसिंग ज़ोन की स्थापना 1984 में हुई और 2002 में SEZ का दर्जा दिया गया। यहाँ 100 उद्योग धन्धे सौ प्रतिशत एक्सपोर्ट की बुनियाद पर क़ायम हैं, जहाँ 2200 मज़दूर काम करते हैं। उनमें अधिकतर कान्ट्रेक्ट लेबर्स से सम्बन्ध रखते हैं, जो आम तौर पर मामूली मज़दूरी से भी महरूम होते हैं, जिन्हें आम तौर पर लगभग 10 से 12 घण्टे काम के लिए मजबूर किया जाता है। सिंगूर (प॰ बंगाल) और दादरी (उ॰ प्र॰) के Land Acquisition (भूमि अधिग्रहण) की Details (विवरण) को उजागर करने की माँग को भी पश्चिमी बंगाल सरकार ने यह कहकर हमेशा नामंज़ूर कर दिया कि यह एक व्यापारिक रहस्य (Trade Secrets) है।

SEZ ACC (2000) के अनुच्छेद 50 (जिसे बाद में निरस्त कर दिया गया।) के अनुसार SEZs को लेबर वैलफ़ेयर, कर्मचारियों के झगड़ों, काम के माहौल, बूढ़े मजदूरों के लिए छूट और सहूलतों आदि से सम्बन्धित तमाम राष्ट्रीय क़ानूनों से बरी कर दिया गया था।

SEZ को निर्यात की तरक़्क़ी (Promotion of Export) के मक़सद के तहत क़ायम किया जाता है। जिसके सम्बन्ध में सरकार का यह मानना है कि एक्सपोर्ट में बढ़ोतरी और 30 लाख नए रोज़गार का कारण होगा।

विज्ञापन (इश्तिहारबाज़ी) और मीडिया मेनेजमेंट

मीडिया मैनेजमेंट साम्राज्यवादी ताक़तों का एक महत्वपूर्ण हथियार है। आम तौर पर अख़बारात और चेनलों के लिए व्यापार और व्यवसायिक सरगर्मियाँ प्रसारण का महत्वपूर्ण अंश होती हैं। इन प्रसारणों में अपनी ज़रूरतों के अनुसार अंशों को शामिल करने के लिए मीडिया मैनेजमेंट का Tool अपनाया जाता है।

इसलिए बदतरीन समाजी भेदभाव और असमानता के बावजूद हम चेनलों और अख़बारों के ज़रीए से लाखों लोगों को रोज़गार उपलब्ध कराने, व्यापार में वृद्धि, GDP का असाधारण ग्रोथ, शेयर बाज़ारों की उछाल, नई-नई चीज़ों को परिचित कराने, Celebrities के दिन-रात के शेडयूल आदि की ख़बरें पढ़ते और सुनते-रहते हैं लेकिन हज़ारों किसानों की आत्महत्याओं के विवरण जानने के लिए हमें किसी इनसानी हुक़ूक़ कमीशन की पत्रिका या वेबसाइट ही छाननी पढ़ती है।

सवाल यह है कि आख़िर इस परस्पर विरोधी बात का क्या कारण है? एक सुप्रसिद्ध दैनिक अख़बार के सम्पादक ने बड़ा दिलचस्प लेकिन वास्तविक कारण बयान किया है। उसने बताया है कि एक उच्च स्तर के अख़बार की कुल क़ीमत लगभग छः रुपये होती है। जबकि एक साधारण पाठक केवल एक रुपया ही उसके लिए अदा करता है; जिसमें 43 पैसा पब्लिशर को प्राप्त होता है। बाक़ी क़ीमत एडवर्टाइज़र्स ही अदा करते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो यह कि सम्पादक विभाग के मुक़ाबले में एडवर्टाइज़िंग डेस्क 12 गुना ज़्यादा महत्त्वपूर्ण होती है। यही कारण है कि आज बड़े अख़बार समाज के ख़ुशहाल वर्ग की नुमाइन्दगी ज़रूर करते हैं लेकिन वास्तविक भारत का प्रतिबिम्ब उनमें कम झलकता है।

पूँजीवादी शक्तियों के आक्रामक प्रोपेगण्डे और विशेष कल्चर को बढ़ावा देने और समाज के विशेष वर्ग पर उनकी दया-दृष्टि जहाँ पूँजीवादी कल्चर को स्वीकृत कराने की कोशिशों को प्रदर्शित करती है, वहीं समाज के निम्न वर्ग के प्रति उनकी बदतरीन बेरुख़ी और बेहिसी को भी उजागर करती है। इसी प्रोपेगेण्डे और इश्तिहारबाज़ी न खाओ-पियो और मौज करो' कल्चर को बढ़ावा देने में महत्त्वपूर्ण रोल अदा किया है। यही कारण है कि आज के नौजवानों को किसानों की आत्महत्याओं और सिंगूर के अत्याचार प्रभावित नहीं कर पाते। हाँ, वे किसी फ़िल्मी हस्ती के ब्लॉग पर रोज़ाना यह जानने के लिए ज़रूर विज़िट करेंगे कि जनाब के कन्धे की तकलीफ़ का क्या हाल है।

मीडिया के प्रोपेगेण्डे और इश्तिहारबाज़ी ने हर जगह एक अजीब बेहूदा कल्चर को जन्म दिया है, जहाँ इनसानियत की गम्भीर समस्याओं पर चिन्तन और ग़ौर-फ़िक्र करने के लिए कोई स्थान नहीं। यहाँ एक उदाहरण इस स्थिति को दिखाने के लिए काफ़ी है कि कोका कोला के प्रोडक्शन को जब Introduce कराया गया तो स्थानीय लोगों के बेपनाह जोश और जिज्ञासा को अख़बारों ने 'हिस्ट्रिया' का नाम दिया था। यह उस धरती की कहानी है जिसने कुछ ही साल पहले कोका कोला के संरक्षक और सरपरस्त देश से आज़ादी के लिए लाखों जानों की कुरबानियाँ पेश की थीं, अर्थात वियतनाम!

विशेष रूप से इनफ़ॉरमेशन टेक्नोलाजी ने पिछले कुछ सालों में पूँजीवादी रुझानों को व्यावहारिक रूप देने में बड़ा ही महत्त्वपूर्ण रोल अदा किया है। एक विचारक का कथन आधुनिक पाश्चात्य टेक्नोलॉजी के लिए बड़ी सीमा तक सच्चा नज़र आता है कि 'इल्मी इनक़िलाब अपने आस्तीन में साम्राज्यवाद को छिपाकर लाता है।' 39 लाख इंटरनेट होस्ट्स आज अमेरीकी संस्कृति और विचारधारा को व्यावहारिक रूप देने का बेहतरीन ज़रीआ हैं। एक तरफ़ किसानों की आत्महत्याएँ आम हैं और दूसरी ओर फ़ूड टेक्नोलॉजी के सहारे प्रासेस्ड फ़ूड कल्चर परवान चढ़ रहा है। बाज़ार में कैलिफ़ोरनिया के सेब देसी फलों पर छा गए हैं। बच्चों की मासूमियत पर अब मिक्की और डोनाल्ड नहीं बल्कि Play Station का क़ब्ज़ा है। Age of Empire जैसे गेम्स के ज़रीए से माइक्रोसॉफ़्ट इन्हें तरबियत देता है कि—

> "नई दुनिया को फ़तह करो, दौलत और ताक़त बढ़ाओ, बेपनाह इनाम और सम्मान पाओ, अपने विरोधियों को मात देकर अपनी सल्तनत को फैलाए जाओ और बड़े-बड़े इलाक़ों पर क़ब्ज़ा (Colonize) किए जाओ!!"

लिट्रेचर और फ़िल्में

लिट्रेचर पूँजीगत भेदभाव का एक और महत्त्वपूर्ण ज़रीआ है। यह समझा जाता है कि डिजिटल दौर में लिट्रेचर अब इतना प्रभावित करनेवाला और आकर्षक नहीं रहा। लेकिन वास्तविकता इस कल्पित विचार का खण्डन करती है। आज जितनी किताबें लिखी और पढ़ी जा रही हैं शायद उतनी न कभी लिखी गई हों और न पढ़ी गई हों। 'हैरी-पॉटर' किताब ने विशेष रूप से बच्चों के ज़हनों को जितना गन्दा किया, जिस पैमाने पर व्यापार किया और जिस स्तर पर लोगों को दीवाना बनाकर रखा, उसकी मिसाल नहीं मिलती।

हर देश में पश्चिमी दूतावास अपनी शानदार लाइब्रेरियों को क़ायम करके और जरनल्स जारी करके अपनी संस्कृति को व्यावहारिक रूप देने की कोशिशों में जुटे नज़र आते हैं। भारत में अमरीकी और ब्रिटिश लाइब्रेरियाँ, स्पेन मैगज़ीन और इसके लेख अब कई शहरों में उपलब्ध हैं।

इस लिस्ट में फ़िल्में भी एक महत्त्वपूर्ण ज़रीआ हैं। हॉलिवुड फ़िल्में नव-साम्राज्यवाद (Neo-Imperialism) का सबसे प्रभावी हथियार रही हैं। आज कल्चरल इण्डस्ट्री (विशेष रूप से सिनेमा सेक्टर) पर अमरीका का 80 प्रतिशत क़ब्ज़ा है। दुनिया के तमाम ही इलाक़ों में हॉलिवुड फ़िल्मों का जादू छाया हुआ है। कमर्शियल, साइंसी फ़िक्शन, ऐनिमेशन, एक्शन, चाइल्ड मूवीज़, कॉमेडी, आर्ट, डॉक्यूमेंट्री और दूसरी कई तरह (Catagories) की फ़िल्मों के साथ हॉलिवुड इण्डस्ट्री पूरी दुनिया में बढ़त बनाए हुए है। दुनिया के 88 देशों के पास कोई फ़िल्म इण्डस्ट्री नहीं है। ये वे देश हैं जहाँ कोई डॉक्यूमेंट्री भी नहीं बनाई जाती। इसके अतिरिक्त दूसरे सौ से अधिक देश ऐसे हैं जो इस मैदान में अमरीकी फ़िल्मों का मुक़ाबला नहीं कर पाते। उदाहरण के लिए इटैलियन बॉक्स ऑफ़िस की रिपोर्ट के अनुसार टॉप-टेन फ़िल्मों में 9 अमरीकी फ़िल्में होती हैं और हॉलिवुड फ़िल्में लोकल फ़िल्मों के मुक़ाबले में 38 प्रतिशत बढ़त बना

लेती हैं। दुनिया की पाँच बड़ी फ़िल्म बनानेवाली कम्पनियाँ भी अमरीकी हैं। अमरीकी म्यूज़िक इण्डस्ट्री का सालाना कारोबार 20 बिलयन डॉलर है, जिसका 70 प्रतिशत कारोबार अमरीका के बाहर के देशों में अंजाम पाता है।

ज़बान (भाषा)

विशेष रूप से अमरीकी शैली की अंग्रेज़ी पूँजीवादी साम्राज्य का एक अन्य महत्त्वपूर्ण और प्रभावी हथियार है। कुछ दिनों पहले BPO से निकाले गए एक मुलाज़िम की कहानी अख़बारों में छाई रही जो अंग्रेज़ी में पूरी महारत रखने के बावजूद सिर्फ़ इस वजह से कम्पनी से निकाल दिया गया कि उसकी अंग्रेज़ी अमरीकी शैली की नहीं थी। लेकिन क़ानूनी लड़ाई के ज़रीए से उसे फिर से कम्पनी में रख लिया गया। इन घटनाओं से अमरीकन अंग्रेज़ी के बनावटी दबदबे के सहारे दूसरी ज़बानों को उखाड़ फेंकने और एक ख़ास तहज़ीब और संस्कृति को प्रभावी करने की कोशिशें साफ़ महसूस होती हैं। इस समय दुनिया में 6000 ज़बानें (भाषाएँ) पाई जाती हैं। इनमें से 50 प्रतिशत ख़त्म होने के कगार पर हैं, और जल्दी ही ख़त्म हो जाएँगी। 90 प्रतिशत ज़बानें इंटरनेट पर मौजूद ही नहीं हैं। इनके मुक़ाबले में अमरीकी अंग्रेज़ी इंटरनेट पर छाई हुई है। जापान, जर्मनी, चीन और कई यूरोपीय देश, जिन्होंने अपनी ज़बान के सहारे तरक़्क़ी की मिसालें क़ायम की थीं, वे भी सभ्यता के इस हमले के कारण अंग्रेज़ी सीखने के लिए मजबूर हैं।

यह वह हथियार है जो पूरी दुनिया में Polarised society (दो ध्रुवीय समाज) को बनाने में बड़ा ही महत्त्वपूर्ण रोल अदा कर रहा है।

पूँजीवादी तानाशाही और डिप्लोमेसी

ग़रीब देशों में अपने समर्थकों की तानाशाही को क़ायम रखना, उनको बढ़ावा देना और उनकी सहायता के ज़रीए से सूदी कारोबार का

जाल बिछाना पूँजीवादी साम्राज्य की सफल कार्यविधि रही है। प्राकृतिक संसाधनों से मालामाल कई देशों की राजनीति इसी कार्यविधि का स्पष्ट प्रमाण है। साम्राज्यवादी ताक़तें उन लोगों के साथ आपसी सहमति का रवैया अपनाती हैं जिनके हाथों में सत्ता की बागडोर होती है, ताकि इस बात को यक़ीनी बनाया जा सके कि उन देशों के संसाधनों के ज़रीए हासिल होनेवाला पैसा मॉडर्नाइज़ेशन और डेवेलपमेन्ट (नवीनीकरण और विकास) के नाम पर Multi-National Corporations के ज़रीए से मल्टी नेशनल बैंकों में लगा रहे। इस तरह उन संसाधनों का बहुत ही कम लाभ लोकल आबादी को पहुँच पाता है।

साम्राज्यवादी ताक़तें इस बात को निश्चित करती हैं कि इस आपसी सहमति की पाबन्दी करनेवाली हुकूमतें सत्ता पर जमी रहें, चाहे उन्हें आम लोगों का समर्थन प्राप्त न हो। मध्य एशिया के देश इसी साम्राज्यवादी मॉडल की खुली मिसालें (Prototype) हैं।

पिछली सदी के 70 के दशक में ITT ने अमेरीका की सेंट्रल इंटेलिजेंस ऐजेंसी (CIA) को एक मिलियन डॉलर का ऑफ़र इसी उद्देश्य से दिया था कि वह चीली के नेशनल इलेक्शन में सिल्वाडोरा लैण्ड की हार को यक़ीनी बनाए। क्योंकि उनकी जीत पूँजीवादियों के हित में न थी। एमनेस्टी इंटरनेशनल की रिपोर्ट (1994) के अनुसार Shell ने नाईजीरिया में विरोधियों के क़त्ल के लिए मोटी रक़मों के बदले फ़ौजी कमाण्डरों की सेवाएँ प्राप्त की थीं।

वे देश जहाँ सीधे तौर पर तानाशाही की सम्भावनाएँ नहीं होतीं वहाँ आपसी सहमति की डिप्लोमेसी का हथियार इस्तेमाल किया जाता है, जिसके अनुसार लोकल स्तर के हुकमरानों को लालच और धमकियों के ज़रीए से अपनी शर्तें मानने के लिए मजबूर किया जाता है। राजनीतिक उथल-पुथल के शिकार ग़रीब देशों में संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था को भी इस डिप्लोमेसी के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

मध्य अफ्रीका का एक देश कांगो रिपब्लिक इसी ख़ूनी डिप्लोमेसी की दर्दनाक मिसाल है, जहाँ धरती कोल्टान (KOLumbite TANtalite) उगलती है। इलेक्ट्रॉनिक चिप्स के एक अनिवार्य अंश की हैसियत से उसे जादूई धूल (Magic Dust) की संज्ञा भी दी गई है। धरती के इस क़ीमती अंश पर क़ब्ज़ा जमाने के लिए मोबाइल फ़ोन्स और कम्प्यूटर चिप्स से जुड़ी कम्पनियों ने साम्राज्यवादी ताक़तों में वह तांडव मचाया है कि ख़ुदा की पनाह. . . . !! लाखों इनसानों के क़त्ल व ख़ून के बाद UNO की आड़ में अब उनके लिए कोल्टान की लूट भी सम्भव है और कोड़ियों के भाव मोबाइल्स की तैयारी भी. . . . . और इसके बदले में अरबों डालर का लाभ भी . . . . . !

दुनिया के लिए कोल्टान जादूई धूल हो तो हो, लेकिन इस ग़रीब देश की जनता के लिए तो यह मात्र 'जादूई आफ़त' ही सिद्ध हुई है, जिसने उन्हें और ज़्यादा ग़रीब व महरूम कर दिया।

ग़रीब देशों की महरूम जनता पर पूँजीवादी साम्राज्य की धौंस और धाँधली की दास्तान बड़ी लम्बी है। राजनीतिक धौंस तो नज़र आती है लेकिन धौंस और ज़बरदस्ती की वह क़िस्म जिसको जल्दी से समझा नहीं जा सकता, शोषण (Exploitation) कहलाता है। अधिक से अधिक लाभ के द्वारा राजनीतिक धौंस, ज़बरदस्ती और शोषण नवीन पूँजीवादी साम्राज्य का अब तक का फ़ार्मूला रहा है।

समाजी भेदभाव की अलामतें और प्रभाव

ग़रीबी और भुखमरी

सामाजिक भेदभाव का एक लाज़िमी नतीजा भुखमरी और ग़रीबी भी है। आम तौर पर बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करने के नारों के साथ राजनीतिक पार्टियाँ मैदान में उतरती हैं, लेकिन सही बात तो यह है कि खाने-पीने की चीज़ों की कमी उनके लिए कोई क़ौमी और सामाजिक विषय नहीं है। क्योंकि भारत अपनी ज़रूरत से अधिक अनाज पैदा करता है और इस तरह गोदामों में बड़ी मात्रा में अनाज का स्टॉक होता है। यह स्टॉक इसलिए नहीं होता कि आम लोगों को खाद्य-पदार्थों की ज़रूरत नहीं रही। बल्कि इसलिए है कि जिन्हें ज़रूरत है उनके अन्दर सामाजिक भेदभाव के कारण ख़रीदने की ताक़त (Purchasing Power) नहीं है। यह एक बनावटी ग़रीबी और महरूमी है जो पूँजीवादी साम्राज्य की दौलत को इकट्ठा करके रखने (Accumulation) का अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का हथियार है। देश में खाद्य-पदार्थों की ज़रूरतों को पूरा करने के मुक़ाबले एक्सपोर्ट को आगे रखनेवाली पॉलीसियों ने हमारी खाद्य-सम्बन्धी आवश्यकताओं पर बुरा असर डाला है। कुछ ही दिनों पहले ख़ास तौर से खाने-पीने की चीज़ों की क़ीमतें जिस होश उड़ा देनेवाले अन्दाज़ में बढ़ी हैं इससे देश का हर नागरिक बेचैन, हैरान और परेशान है। हर आदमी यह मानता है कि यह एक बनावटी उछाल है। बढ़ी हुई क़ीमतें ग़रीबों की जेब काटकर वुसूल की जा रही हैं लेकिन इस बढ़ती हुई मँहगाई का कोई फ़ायदा किसान को नहीं पहुँचता। दूध और दाल जैसी बुनियादी चीज़ों में भी आम लोग कटौती के लिए मजबूर हैं। यूनिसेफ़ की रिपोर्ट के अनुसार अत्यन्त ग़रीबी और खाद्य-पदार्थों की कमी की वजह से रोज़ाना मरनेवाले बच्चों की संख्या 25000 होती है और ये मौतें उन अत्यन्त पिछड़े हुए गाँवों में होती हैं जहाँ पूँजीवादियों

की चकाचौंध दुनिया उनके दिलों और अन्तःकरण (Intuition) को नहीं झिंझोड़ पाती।

एक्शन-ऐड (2009) के अनुसार भारत में भूखे लोगों की संख्या में निरन्तर बढ़ोत्तरी हो रही है। 1990 से अब तक यह बढ़ोत्तरी तीन करोड़ दर्ज की गई है। रिपोर्ट के अनुसार यह समस्या ख़ूराक की कमी की नहीं बल्कि ख़ूराक तक पहुँच (Approach) की है। स्पष्ट है कि सामाजिक असमानता और भेदभाव के कारण ही उनकी पहुँच वहाँ तक नहीं हो पाती।

बदतरीन ग़रीबी और ब्याज की मार की वजह से पिछले कुछ सालों में किसानों की लगातार आत्महत्याएँ पूरी दुनिया की तवज्जोह का केन्द्र बनीं। भारत में पिछले दस सालों के रिकॉर्ड के अनुसार हर 32 मिनट में एक किसान की आत्महत्या दर्ज की गई है। आत्महत्या की दो तिहाई घटनाएँ महाराष्ट्र, आन्ध्राप्रदेश, कर्नाटक, केरल और मध्य प्रदेश में दर्ज की गईं। विदित हो कि पहले तीन राज्य तो वे हैं जो हमारे देश में पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की कार्यशालाएँ रही हैं। महाराष्ट्र पूँजी निवेश के सम्बन्ध में हमेशा पहले नम्बर पर रहा है। इसी के साथ किसानों की आत्महत्याओं के मामले में भी वह हमेशा पहले नम्बर पर ही रहा है। विशेष रूप से पिछले दस सालों में जब पूँजीवादी साम्राज्य ने देश में मज़बूत क़दम जमाए तो महाराष्ट्र के किसानों के हौसले भी उसी अनुपात में टूटते चले गए और इन अफ़सोसनाक घटनाओं की दर में भी तीन गुना बढ़ोत्तरी हुई। क्या कारण है कि वे राज्य जिनके GDP और Per Capita Income की दर देश के औसत से ऊपर मानी जाती है और जिनकी तरक्क़ी की चर्चा पूरे देश में होती रहती है उन्हीं राज्यों में किसान आत्महत्या करने के लिए मजबूर हो जाते हैं?

कारण स्पष्ट है। पूँजीवादी साम्राज्य ने जहाँ जड़ें जमाईं उस समाज को भेदभाव का शिकार करके खोखला किया, और यही महरूमियाँ आख़िरकार ग़रीबों को अपनी ज़िन्दगी का आख़िरी क़दम उठाने पर

उकसाती हैं। यह मात्र महाराष्ट्र से सम्बन्धित सच्चाइयाँ नहीं हैं, बल्कि यह एक अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के घर अमरीका में भी किसानों में आत्महत्याओं की दर पिछली आम दरों के मुक़ाबले में दो गुनी है। ब्रिटेन में यह दर एक हफ़्ते में एक है।

समाजी महरूमी की इस स्थिति को वे लोग, जिनके हाथों में हमारे देश की बागडोर होती है, ख़ूब समझते हैं। लेकिन इस स्थिति को ख़त्म करने के लिए कोई साहसिक क़दम उठाने के लिए वे पूँजीवादी साम्राज्य के सामने अपने को मजबूर और बेबस पाते हैं। देश के वर्तमान प्रधानमन्त्री (डॉ॰ मनमोहन सिंह) भी यह मानते हैं कि खेती के विकास की दर बहुत प्रभावित हुई है जो किसानों के मानसिक तनाव का कारण है और अब खेती एक ऐसा काम बनती जा रही है जिसका कोई हासिल नहीं। पूँजीवादी सुधार ने किसानों को बेपनाह मँहगे बीज दिए हैं और एक ऐसी टेक्नोलाजी दी है जिसको किसान आसानी से हासिल ही नहीं कर सकते। इसी के साथ-साथ उसने लोगों में एक-दूसरे से आगे बढ़ जाने की होड़ पैदा कर दी है। साथ ही टेक्नोलाजी के इस्तेमाल के लिए जिस योग्यता और सूझ-बूझ की ज़रूरत होती है उससे महरूमी और मँहगे सूदी क़र्ज़ किसानों का भाग्य रहे। बहुत जल्दी फ़ायदे की तमन्ना में मँहगे कीटनाशक (Pesticides) की ख़रीदारी का रुझान पैदा हुआ और जब उन कीटनाशकों से पर्याप्त नतीजे सामने नहीं आ सके तो उसी दवा से अपने को ख़त्म कर लेने का रुझान भी पाया जाता है। उनकी महरूमियों का अन्दाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि 60 प्रतिशत आत्महत्याओं का कारण क़र्ज की मामूली रक़म (मात्र 5 से 25 हज़ार रुपये) होती है।

सांस्कृतिक भेदभाव

नव-पूँजीवादी साम्राज्य ने समाज में जो भेदभाव और असमानता पैदा की है वह मात्र आर्थिक और सामाजिक स्तर ही तक सीमित नहीं

है, बल्कि सांस्कृतिक स्तर पर भी एक बनावटी खाई की शक्ल में स्पष्ट नज़र आती है।

सांस्कृतिक हमले के नतीजे में समाज के विभाजित अंश (Devided Sections) न केवल एक-दूसरे से दूर हो जाते हैं, बल्कि सांस्कृतिक अजनबियत और बेगानगी की स्थिति भी परवान चढ़ रही है। विभिन्न देशों के विद्वानों, पत्रकारों, स्टूडेंट्स और पार्लियामेंट के मेम्बरों आदि को बुलाकर उनपर अपनी संस्कृति का सिक्का जमाया जाता है, ताकि वे सभ्यता और संस्कृति की उस चकाचौंध से अत्यन्त आकर्षित होकर स्वदेश लौटें और फिर उसका प्रतिनिधित्व करें तथा उस संस्कृति के कुशल वक्ता बनकर उसका प्रचार एवं प्रसार करें। यह एक अत्यन्त प्रभावी हथकण्डा है, जिसका इस्तेमाल साम्राज्यवादी ताक़तें ख़ूब करती हैं। भारत सहित विभिन्न देशों के दल अमरीका के सैर-सपाटे के लिए लगभग रोज़ाना जाते हैं। सरकारी मेहमाननवाज़ी और मेज़बानी की मेहरबानियों से आख़िर में इतने दब जाते हैं कि उनके लिए सच्चाई को व्यक्त करना एक मुश्किल काम बन जाता है। आजकल उन दलों में शामिल करने के लिए जहाँ स्टूडेंट्स और मुसलमान लेखकों की तरफ़ विशेष ध्यान दिया जा रहा है वहीं मुसलमान उलमा को भी विशेष रूप से आकर्षित किया जा रहा है।

दिल और नज़र को हैरत में डाल देनेवाले बहुत-से प्रोग्राम, जैसे यूथ एक्सचेंज एण्ड स्टडी प्रोग्राम, इंटरनेशनल विज़िटर्स लीडरशिप प्रोग्राम, एजूकेशन सेक्टर रिफ़ॉर्म प्रोग्राम आदि विकासशील देशों के लिए ही विशेष रूप से लाँच किए गए हैं, जिसके लिए व्यक्तियों का चयन भी विदेश मन्त्रालय के द्वारा ही किया जाता है। संस्कृति के इस आदान-प्रदान के अभ्यास के ज़रीए से एक ख़ास कल्चर को परवान चढ़ाया जाता है जो देश के समाज को तदधिक बाँटने में सहायक सिद्ध होता है।

अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं, विशेष रूप से यूनेस्को (UNESCO), पर कंट्रोल के ज़रीए से विशेष पश्चिमी सभ्यता को बढ़ावा देना भी इस सिलसिले की एक महत्त्वपूर्ण और कामयाब कोशिश रही है। जब 2005 ई० में International Convention on Cultural Diversity के अवसर पर यूनेस्को में कल्चरल प्रोडक्ट्स (फ़िल्में, संगीत और आर्ट आदि) को व्यापारिक वस्तुओं से अलग घोषित करके उनके व्यापारिक अधिकार सम्बन्धित देशों को दिए जाने का प्रस्ताव पेश किया गया तो अमरीका और इस्राईल ने इसका कड़ा विरोध किया और इसे नाकाम बना दिया। उनको डर यह था कि इस प्रस्ताव के पास हो जाने के नतीजे में हॉलिवुड फ़िल्मों, संगीत से सम्बन्धित वस्तुओं और दूसरे सांस्कृतिक माध्यमों पर विभिन्न देश परीसीमन (Limitations) या ऊँचे-ऊँचे कर न लगा दें। मामले को अपने पक्ष में करने के लिए कोण्डालीज़ा राइस (तत्कालीन अमेरीकी विदेश मन्त्री) ने इस विषय पर यूनेस्को के बायकॉट की धमकी भी दी थी।

पूर्वी समाजों में सांस्कृतिक हमले के द्वारा बरपा किया गया सांस्कृतिक भेदभाव स्पष्ट रूप से नज़र आता है। हमारे समाज के कुछ प्रभावित क्षेत्रों (Infected Sections) में यह भेदभाव आम तौर पर देखने में आता है। लम्बी ज़ुल्फ़ों, ग़ुब्बारों की तरह उभरे कृत्रिम पट्ठों और नित नए रंगों से सजी और बहुत कम कपड़े से बनी ठिठुरती-सिकुड़ती टी-शर्ट में फँसा हुआ यदि कोई नौजवान दिखाई दे तो आप अन्दाज़ा कर लीजिए कि इस बेचारे को टॉम क्रूज़, ऑरनल्ड या माइकल जैक्सन की 'महानताओं' ने कितना घायल कर रखा है..... !

पर्फ़्यूम्स की महक हो या बाइक के इंजन का पॉवर, हर चीज़ की ट्रेनिंग के लिए हमारे नौजवान पश्चिमी ट्रेंड्स का गहन अध्ययन और आपस में बड़ी बहस करते हुए नज़र आएँगे। कल तक मामूली से मामूली ईमान रखनेवाला मुसलमान भी बैतुल्लाह (काबा) की एक झलक पाने की तमन्ना लिए बेचैन रहता था, लेकिन आज अच्छे-भले, अच्छी

सूझ-बूझ रखनेवाले और अच्छे पढ़े-लिखे नौजवानों (जिनका दो माह का वेतन भी कभी-कभी इस तमन्ना को पूरा करने के लिए काफ़ी हो सकता है) का अच्छा-ख़ासा बैंक-बैलेंस भी उनके अन्दर वह तड़प पैदा नहीं कर पाता। हाँ, ऑन साइट के सुहाने सपने उनकी नींदें हराम करने के लिए काफ़ी होते हैं।

ये और इस प्रकार के कई दृश्य इतने स्पष्ट हैं कि घटनाओं को गिनवाने की ज़रूरत नहीं रहती। सांस्कृतिक यलग़ार के द्वारा साम्राज्यवादी ताक़तों ने हमारे समाज में दराड़ डालकर एक पूरे वर्ग को अपने रंग में रंग लिया है। यह वर्ग वह है जिसे अपने ही समाज की बहुसंख्या से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। हाँ, वह अधिकतर मामलों में साम्राज्यवादी सोच का समर्थक अवश्य दिखाई देता है। भारतीय समाज में पनप रहे इस अजनबी वर्ग की विशेषताएँ संक्षिप्त रूप में इस प्रकार बयान की जा सकती हैं—

सामूहिक हितों पर व्यक्तिगत हितों को प्रभावी रखना, संजीदगी की कमी, वैचारिक उथलापन, उपभोक्तावाद, रिश्ते-नातों और सम्बन्धों में उदासीनता, आपसी भईचारा और मुहब्बत में कमी, बहुत जल्दी नतीजा हासिल करनेवाली सोच, फ़ास्ट फ़ूड कल्चर, मोटापा, बुज़ुर्गों की सेवा करने से बचना, आध्यात्मिक मूल्यों और धर्म से दूरी, मायूसी, अश्लीलता का प्रभाव, मात्र दौलत हासिल करने के लिए शिक्षा ग्रहण करना आदि।

राष्ट्रीय उद्योग और कला का पतन

MNCs ने उच्च स्तर और आक्रामक प्रोपेगण्डे (इश्तिहारबाज़ी) के द्वारा अपने उत्पादनों का सिक्का मार्केट पर इस हद तक जमा दिया कि राष्ट्रीय उद्योग धन्धों की कमर टूट गई। इसके नतीजे में उत्तर भारत के अधिकतर घरेलू उत्पादन, खुदरा बेचने की छोटी दुकानें आदि तेज़ी से बन्द हो रही हैं और यहाँ काम करनेवाले रोज़गार से महरूमी का शिकार हो रहे हैं। GATT के सहारे यूरुगोए (Urugua) कॉन्फ्रेंस में मंज़ूर किए

गए TRIPS और TRIMS क़ानूनों ने जहाँ विशुद्ध देशी पैदावार, जैसे बासमती चावल और हल्दी आदि के अन्तर्राष्ट्रीय कारोबार को भी मुश्किल बना दिया, वहीं Inflow और Outflow का हल्का जाइज़ा विदेशों में कारोबार करने हेतु पैसा लगाने से दीर्घावधि लाभ प्राप्ति पर भी सवाल खड़ा करता है।

Outflow अदायगी		**Inflow** आमद
क़र्ज़ की अदायगी		
सूद की अदायगी		ForeignDirect Investment
टेक्निकल फ़ीस		विदेशी क़र्ज
कैपिटल रिपार्टीशन	सरमायाकारी (पूँजीनिवेश)	विदेशी सहायता
पेटेंट फ़ीस		
रॉयल्टी		
मैनेजमेंट फ़ीस		
इंश्योरेंस की अदायगी		
मुनाफ़ाख़ोरी		

अन्तर्राष्ट्रीय पूँजीवादी नीतियों के नतीजे में घरेलू उद्योग का पतन एक स्पष्ट वास्तविकता है। अगस्त 1999 ई॰ में सरसों के तेल में मिलावट की शिकायत की बुनियाद पर दिल्ली सरकार ने सरसों के तेल के बेचने पर पाबन्दी लगा दी थी और खाने के तेल के आयात पर लगी तमाम पाबन्दियों को ख़त्म कर दिया था। आयात को खुली छूट दी गई जिससे खाने के तेल के आयात में 60 प्रतिशत वृद्धि हो गई और स्थानीय किसानों को इतना नुक़सान हुआ जिसकी भरपाई नहीं की जा सकती।

तेल की ख़राब क्वालिटी के लिए ज़िम्मेदार मुनाफ़ाख़ोर व्यापारी होते हैं, न कि किसान। लेकिन इसकी मार आख़िरकार बेचारे किसानों को ही झेलनी पड़ती है।

यह भी एक दोमुँही नीति ही कहलाएगी कि विकासशील देशों में एक ओर तो सरकारों को इस बात के लिए उकसाया जाता है कि वे किसानों को दी जानेवाली सब्सिडीज़ को कम से कम कर दें, तो दूसरी ओर अमरीकी किसान सरकार की ओर से मिलनेवाली सब्सिडी से लाभ उठाकर अन्तर्राष्ट्रीय मण्डी में खाद्य वस्तुओं पर क़ीमतें कम करके बेचते हैं और क्षेत्रीय खाद्य पदार्थों को मण्डी से बेदख़ल कर देते हैं। यही कारण है कि अमरीकी तेल भी भारतीय मार्केट में आसानी से जगह बना लेता है।

इस प्रकार साम्राज्यवादी ताक़तें व्यापारिक क्षेत्रों में एक ऐसी लम्बी चौड़ी दीवार बनाकर खड़ी कर देते हैं जिसको फलाँग कर व्यापारिक दौड़ में मुक़ाबले की हिम्मत जुटा पाना राष्ट्रीय उद्योगों, व्यापारियों और किसानों के लिए बहुत बार सम्भव नहीं रहता।

समाजी बेचैनी और अपराध

पूँजीवादी साम्राज्य राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं को सूदी क़र्जों में फँसाकर कंट्रोल करता है। प्रश्न यह है कि भारत जैसे देशों के ग़रीब समाज के किस हिस्से पर सूदी क़र्ज़ की मार पडती है? न्यू इंटरनेशनलिस्ट (Issue 312) की रिपोर्ट Debt- The facts के अनुसार क़र्ज के नीचे दबा हुआ देश जितना ग़रीब होगा उतनी ही ज़्यादा इस बात की सम्भावना होगी कि क़र्ज़ की अदायगी की मार देश की उस जनता पर पड़े जिस तक उस क़र्ज़ का कोई लाभ न पहुँचता हो। स्पष्ट है कि यह सामाजिक भेदभाव बदतरीन क़िस्म की असमानता में वृद्धि कर देती है जिससे लोगों में बेचैनी पैदा हो जाती है। इसी माहौल में अतिवादी और हिंसात्मक संगठन पनपते हैं जो अपराध और क़त्ल और ख़ून का बाज़ार गर्म करते हैं। हमारे देश के कई राज्यों में मौजूद विभिन्न अतिवादी और हिंसात्मक संगठन इसी समाजी बेचैनी का नतीजा हैं। विदेश मन्त्रालय के आँकलन के अनुसार देश के 607 जनपदों में से 120 से 160 जनपद नक्सली हिंसा से प्रभावित हैं।

समाजी बेचैनी जब संघर्ष और विरोध प्रदर्शन का रूप धारण कर लेती हैं तो फिर उन्हें सख़्ती से कुचलना भी साम्राज्यवादी ताक़तों का एक महत्त्वपूर्ण और सफल हथियार रहा है। अतः SEZ के विरुद्ध उठनेवाली आवाज़ को जिस क्रूरता के साथ कुचला गया है, देश की जनता ने उन दृश्यों को कालिंगा नगर और सिंगूर में देखा।

सामाजिक भेदभाव के नतीजे में कुछ बुनियादी समस्याओं का उभरना भी आवश्यक है। उदाहरण के लिए आर्थिक तनाव (Financial Stress), रोज़गार के मामले में बाधाएँ और कंट्रोल, जल्दी पैसा कमाने की चाह, महरूमियों का एहसास, ग़रीबों के साथ समाज का रवैया आदि, जो अन्ततः नित नए अपराध को जन्म देता है। पिछले एक दशक के दौरान होनेवाले अपराध और उनकी ख़बरें इस कष्टदायी सोच को स्पष्ट करती हैं।

पर्यावरणीय अव्यवस्था

MNCs के मशीनी उद्योग से जहाँ बेपनाह उत्पादन होता है वहीं बदतरीन पर्यावरणीय अव्यवस्था भी इससे फैल रही है। दुनिया का कोई देश इस पर्यावरणीय अव्यवस्था से सुरक्षित नहीं है। क्लेमेंशो विरोध-प्रदर्शन के द्वारा यह बात खुलकर सामने आई है कि किस प्रकार ये कम्पनियाँ भारत जैसे देशों को औद्योगिक कचरे का डम्पिंग ग्राउंड (कूड़ादान) बना रही हैं। प्लाची माड़ा आन्दोलन ने सॉफ़्ट ड्रिंक कम्पनियों का वह रोल स्पष्ट किया जो उन्होंने सूखे के दौरान अदा किया था। यूनियन कार्बाइड घटना ने बताया कि इन कम्पनियों के निकट तीसरी दुनिया की जनता की जानों की क्या हैसियत है। जनता की ओर से किए गए कड़े विरोध-प्रदर्शन और न्यायालय में लड़ी जानेवाली लड़ाई के नतीजे में इसको रोक पाना किसी हद तक सम्भव तो हुआ लेकिन वास्तविकता यह है कि देश के अधिकतर क्षेत्रों में जहाँ जनता सूझ-बूझ नहीं रखती है वहाँ पर्यावरण के साथ खिलवाड़ MNCs की नीति का हिस्सा है।

MNCs के व्यापारिक हथकण्डों से उभरी समस्याओं के विरुद्ध उठनेवाले आन्दोलनों की एक लिस्ट निम्नलिखित हैं—

भोपाल हादसा और यूनियन कार्बाइड	1984 में हुए इस हादसे ने हज़ारों व्यक्तियों की जान ली थी। यह आन्दोलन MNCs की इनसानी जानों के प्रति लापरवाही के विरुद्ध आज भी एक पहचान है।
Cargil Seeds के विरुद्ध कर्नाटक के किसानों का आन्दोलन।	सूरजमुखी के बीजों की मार्किट पर क़ब्ज़ा जमाने के लिए GATT प्रस्ताव का सहारा लेनेवाली कम्पनी के विरुद्ध किसानों का 1992 में सफल विरोध-प्रदर्शन।
No to Du Pont	टायरस में इस्तेमाल हानेवाले Nylone 6,6 की पैदावार के लिए क़ायम किए जानेवाले प्लांट के विरुद्ध गोवा की जनता का विरोध प्रदर्शन; क्योंकि यह इनसानी स्वास्थय के लिए हानिकारक तत्व माना जाता है।
Enron वरोधी अभियान	1992 में अमरीका की Enron कम्पनी से तय पाई गई सन्धि के अनुसार महाराष्ट्र की सरकार कई गुना ज़्यादा महँगी बिजली एनरॉन से ख़रीदने की पाबन्द थी। अन्ततः जनता के विरोध प्रदर्शन के कारण 1995 में यह सन्धि निरस्त हो गई।

क्लेमेंशो विरोधी आन्दोलन	उत्पादन केन्द्रों से निकलनेवाले कचरे एसबिस्टास से लदे फ्रांसीसी जहाज़ क्लेमेंशो को ग्रीन पीस ने सख़्त विरोध प्रदर्शन करके और अदालती कारवाई के द्वारा देश में दाख़िल होने से रोक दिया।
सिंगूर SEZ अभियान	सिंगूर (पश्चिमी बंगाल) में प्रसिद्ध उद्योगपति घराने टाटा की ओर से लम्बी-चौड़ी ज़मीन पर टाटा नैनो प्रोजेक्ट प्रस्तावित किया गया। पश्चिमी बंगाल सरकार की ओर से इस प्रोजेक्ट के लिए ज़मीन अधिग्रहित करने की पॉलिसी के ख़िलाफ़ क्षेत्रीय जनता उठ खड़ी हुई। जनता के कड़े विरोध प्रदर्शन के कारण इस प्रोजेक्ट को सिंगूर से उठाकर कहीं और ले जाना पड़ा।

जनस्वास्थ्य

सामाजिक असमानता और भेदभाव का स्वास्थ्य से सीधा सम्बन्ध है। एक अध्ययन के अनुसार सामाजिक भेदभाव में यदि 1 प्रतिशत की वृद्धि होती है तो यह एक लाख में 21.7 से अधिक मौतों का कारण होता है।

भारत में स्वास्थ्य संसाधन (Healthcare Sources) भरपूर न सही लेकिन देश की ज़रूरतों के लिए काफ़ी हैं। भारत में डॉक्टरों का अनुपात 1800 व्यक्तियों पर एक डॉक्टर का है। ऐलोपेथी के अतिरिक्त अन्य इलाज के तरीक़ों को भी यदि गिना जाए तो यह अनुपात 800 व्यक्तियों पर एक डॉक्टर तक पहुँच जाता है। इस प्रकार यह अनुपात एक उच्च स्तरीय अनुपात 1/1500 से भी अच्छा माना जा सकता है।

हमारे देश में दवाइयाँ भी उचित मात्रा (260 bn INR) में तैयार होती हैं। स्पष्ट है कि यह संख्या सन्तोषजनक है लेकिन निम्नलिखित तदधिक आँकलन कुछ दूसरी वास्तविकताओं को बयान करता है—

Particular	शहरी और ग्रामीण अनुपात
• आबादी और हॉस्पिटल बेड का अनुपात	1:15
• आबादी और डॉक्टर्स का अनुपात	1:6
• पब्लिक हैल्थ पर होनेवाले सरकारी ख़र्च।	1:7

जनस्वास्थ्य पर होनेवाले ख़र्चे देश की कुल पैदावार (GDP) का मात्र 6 प्रतिशत होते हैं, जिसमें से मात्र 17 प्रतिशत ख़र्चे सरकार बर्दाश्त करती है। विदित हो कि जनस्वास्थ्य पर सबसे कम ख़र्च करनेवाले 6 देशों में कम्बोडिया, ब्रोण्डी और म्यांमार के साथ-साथ हमारे देश की गिनती भी होती है। हमारे देश में दवाइयाँ बनानेवाली कम्पनियाँ असंख्य दवाइयाँ तैयार ज़रूर करती हैं लेकिन देश की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नहीं बल्कि एक्सपोर्ट करने के लिए।

इस बदतरीन पूँजीवादी विचारधारा और असमानता एवं भेदभाव की मार देश की ग्रामीण जनता पर पड़ती है। यही कारण है कि उनमें बच्चों की मृत्यु-दर 2.5 गुना ज़्यादा है। क़बायली क्षेत्रों में पैदा होनेवाले एक बच्चे के पाँच साल से कम उम्र में मर जाने की सम्भावना आम बच्चों के मुक़ाबले डेढ़ गुना अधिक होती है।

इस भेदभाव को मात्र शहरी और ग्रामीण का भेदभाव नहीं कहा जा सकता बल्कि पूँजीवादी साम्राज्य के कारण उत्पन्न होनेवाला यह भेदभाव और असमानता शहरी समाज में भी दिखाई देता है। शहरी क्षेत्रों में मलिन बस्तियों (Slums) में रहनेवाली 40 प्रतिशत आबादी भी कुछ ऐसी ही बेबसी और बेचारगी की परिस्थितियों से जूझ रही है। हर साल डायरिया से 6 लाख बच्चे मर जाते हैं जो आम तौर से निम्न वर्ग से सम्बन्ध रखते हैं, लेकिन कष्टप्रद वास्तविकता यह है कि गह घटना

मीडिया का विषय बहुत ही कम बन पाती है। हमारे देश में हर साल कैंसर से 3 लाख मौतें हो जाती हैं। इनमें 50 प्रतिशत कैंसर तम्बाकू खाने से पैदा होता है। दूसरे शब्दों में तम्बाकू के इस्तेमाल पर सख़्त कंट्रोल के द्वारा 50 प्रतिशत कैंसर को आसानी के साथ कंट्रोल किया जा सकता है। लेकिन पूँजीवादी ताक़तों के दबाव में आकर सरकारें कभी इस फ़ैसले के लिए तैयार नहीं होतीं।

जनस्वास्थ्य से सम्बन्धित अधिकतर समस्याओं का कारण इसी मुनाफ़ाख़ोरी की मानसिकता में दिखाई देता है जो इनसानी लाशों के बदले दौलत के ढेर जमा करने पर यक़ीन रखती है। यही वजह है कि हमारे देश में प्राइवेट अस्पतालों के अनुपात में 1991 मुक़ाबले लगभग 20 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। प्राइवेट अस्पतालों का बढ़ता हुआ यह अनुपात सरकार के रवैये को प्रतिबिम्बित करता है जो व्यवहारतः वंचित वर्गों के स्वास्थ्य की बुनियादी देख-रेख की ज़िम्मेदारी से भी इनकार करता नज़र आता है।

पिछले एक दशक में इलाज कराने का भार सहन न कर पानेवाले लोगों की संख्या में दो गुना वृद्धि दर्ज की गई। इससे भी अधिक कड़वी वास्तविकता और क्या हो सकती है कि हमारे देश का हर तीसरा मरीज़ अपने इलाज के लिए क़र्ज़ हासिल करने या अपनी जायदाद बेचने के लिए मजबूर होता है। इनमें से भी तन्दुरुस्त होनेवाले अधिकतर 'भाग्यशाली' सदैव के लिए ग़रीबी रेखा से नीचे (Below Powerty Line) पहुँच जाते हैं। के॰ एन॰ नागराज (मद्रास इंस्टीट्यूट ऑफ़ डेवलेपमेंट स्टडीज़) के अनुसार भारतीय हेल्थ सेक्टर दुनिया का सबसे ज़्यादा निजी हेल्थ सेक्टर है। घरेलू अस्पतालों में लुटकर कंगाल होनेवाले भारतियों की संख्या एक अन्दाज़े के अनुसार 2 करोड़ प्रतिवर्ष होती है। (Inequality and Health Care : Dr. Milind Deogaonkar)

पूँजीवादी साम्राज्य के संरक्षण में पनप रहे मुनाफ़ाख़ोर और Unregulated निजी हेल्थ केयर सिस्टम के द्वारा फैल रही बेबसी और महरूमियों की खाई हमारे समाज की एक अत्यन्त बेचैन कर देनेवाली वास्तविकता बन चुकी है।

नैतिक गिरावट

पूँजीवादी साम्राज्य के निकट लाभ उठाने के तमाम रास्ते जाइज़ हैं। अतः इसी सोच के नतीजे में देश के बड़े शहरों में वैचारिक पतन और नैतिक दिवालियापन स्पष्ट दिखाई देता है।

देश के प्रमुख फ़िल्म निर्माता भी यह कहते हुए नहीं शर्माते हैं कि आज जिंस (Sex) और हिंसा ही बिकती है। परिणामस्वरूप हमारी फ़िल्मों के द्वारा यही मान्यताएँ (Values) समाज तक पहुँचाई जाती हैं। जिसका परिणाम जिंसी अपराध (Sex related crimes) और हिंसा के रूप में हमें दिखाई देता है।

सामाजिक भेदभाव का निवारण

सामाजिक भेदभाव के इस माहौल में बुनियादी सवाल हमारी ज़िम्मेदारियों का है। क्या हम दो-ध्रुवी समाज (Polarise Society) के किसी एक हिस्से से जुड़कर सन्तुष्ट हो जाएंगे या उससे आगे बढ़कर भी हमें कुछ ज़िम्मेदारियाँ अदा करनी हैं?

ख़ुदा ने इनसान के अन्दर कुछ स्वाभाविक विशेषताएँ रखी हैं जो उससे अपेक्षा करती हैं कि वह व्यक्तिगत स्वार्थों को छोड़ सामूहिक हितों की ओर बढ़े और एक सुसंस्कृत जीवन व्यतीत करे, जिसके साथ कुछ बातें बहुत ज़रूरी हो जाती हैं। उदाहरण के लिए—

(1) एक-दूसरे की सहायता से आपसी ज़रूरतों की पूर्ति हो।

(2) जीवन में ज़रूरत की चीज़ों को उचित माध्यमों (Medium) के द्वारा बदला जाए अर्थात् Exchange किया जाए।

(3) ज़रूरी चीज़ों की तैयारी के लिए शिक्षा और यातायात के साधनों (Means of Transportations) में वृद्धि की जाए।

(4) आख़िरी चीज़ यह कि व्यक्ति अपनी मेहनत से कमाकर जमा की हुई चीज़ों का स्वयं मालिक हो और उसके बाद उन लोगों के इस्तेमाल में आएँ जो उसके ज़्यादा क़रीबी हों।

यह वह बुनियादी सोच है जो प्रकृति की अपेक्षाओं के अनुसार है और कोई चीज़ ग़लत (गुनाह या पाप) भी नहीं। सवाल यह है कि पूँजीवादी संस्कृति भी इन अपेक्षाओं को पूरा करती नज़र आती है। फिर इसका अन्तिम परिणाम (Ultimate Result) महरूमी और सामाजिक भेदभाव क्यों?

ख़राबियों की असल वजह स्वार्थसिद्धि, आत्मश्लाघा, पूँजीवादिता और ऐश व आराम है।

इस्लामी हल

इस अत्यन्त शोचनीय परिस्थिति से छुटकारा पाने के लिए इस्लाम बुनियादी तौर पर तीन उसूल पेश करता है—

(1) प्रकृति ने कुछ स्वाभाविक उसूल तय कर रखे हैं और वे ज्यों के त्यों हैं। जहाँ इन स्वाभाविक और प्राकृतिक उसूलों में किसी प्रकार की कोई छेड़-छाड़ हो तो तुरन्त उनका सुधार किया जाए।

(2) सभ्य समाज की स्थापना केवल सीमाओं के निर्धारित कर देने से और मात्र क़ानून बना देने से नहीं होती, बल्कि नैतिकता और स्वच्छ मानसिकता जैसी मान्यताएँ बहुत महत्त्वपूर्ण होती हैं। इनके सुधार का प्रबन्ध भी अवश्य होना चाहिए।

(3) क़ानून और सख़्ती से काम वहीं लिया जाना चाहिए जहाँ नितान्त आवश्यक हो।

पूँजीवादी सोच के मुक़ाबले में इस्लाम एक सन्तुलित और न्याय पर आधारित आर्थिक हल पेश करता है। मौलाना सैयद अबुल-आला मौदूदी *(रह.)* ने पूँजीवाद और इस्लाम में अन्तर को ईश्वरीय वाणी के हवाले से बहुत ही सुन्दर ढंग से बयान किया है। आइए इन्हीं बातों पर संक्षेप में प्रकाश डालते हैं।

सबसे महत्त्वपूर्ण चीज़ माल कमाने के साधन हैं। पूँजीवादी व्यवस्था में जहाँ माल कमाने और जमा करके रखने का खुला लाइसेंस दिया जाता है वहीं इस्लाम का स्पष्ट उसूल है कि दौलत हासिल करने के वे सभी तरीक़े अपनाना अवैध है जिनसे किसी दूसरे व्यक्ति को नुक़सान पहुँच सकता हो। फिर यह भी कि वे सभी तरीक़े जाइज़ और वैध हैं जिनसे आपसी लाभ का आदान-प्रदान न्याय के आधार पर हो। क़ुरआन मजीद ने इस उसूल को इस प्रकार बयान किया है—

> "ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, आपस में एक-दूसरे के माल ग़लत ढंग से न खाओ, लेन-देन होना चाहिए आपस की रज़ामन्दी से। और ख़ुद अपनी हत्या न करो। विश्वास करो कि अल्लाह तुमपर दया रखता है। जो व्यक्ति ज़ुल्म और ज़्यादती के साथ ऐसा करेगा उसको हम ज़रूर ही आग में झोंकेंगे।" (4:29,30)

यहाँ यह जो कहा कि 'ख़ुद अपनी हत्या न करो', ये शब्द स्पष्ट रूप से यह सन्देश दे रहे हैं कि अपने फ़ायदे के लिए दूसरे का नुक़सान करना मानो उसका ख़ून चूसना है। इसके अतिरिक्त दूसरे रोगों की ओर संकेत करके न केवल आलोचना की गई बल्कि उन गन्दे रास्तों को सदैव के लिए बन्द कर दिया गया। उदाहरण के लिए रिश्वतख़ोरी और दूसरों का माल हड़प करना (देखें क़ुरआन सूरा-2, आयत 188), अमानत में ख़ियानत (सूरा-2, आयत-283), चोरी (सूरा-5, आयत-38), नाप-तौल में कमी (सूरा-83, आयत-3), अश्लील कारोबार (सूरा-24, आयत-19), यतीम के माल का बे-जा इस्तेमाल (सूरा-4, आयत-10), व्यभिचार और देह-व्यापार से प्राप्त आय (सूरा-24, आयत-33), शराब का उत्पादन (सूरा-5, आयत-90) और सूदख़ोरी (सूरा-2 और सूरा-3)। अब ज़रा सोचिए क्या ये आदेश एवं निर्देश पूँजीवादी धौंस और ज़बरदस्ती की जड़ काटने के लिए पर्याप्त नहीं हैं? अगर इन उसूलों को अपनाया जाए तो हो ही नहीं सकता कि समाज किसी ऊँच-नीच, भेदभाव और असमानता का शिकार हो।

दूसरा महत्त्वपूर्ण आदेश यह है कि दौलत को समेटकर और जमा करके न रखा जाए। यह वह बदतरीन हरकत है जिससे संसाधनों का चक्र (Circulation) रुक जाता है। दौलत समेटकर जमा करनेवाले को यह अन्दाज़ा नहीं होता कि वह पूरे समाज के विरुद्ध एक अत्यन्त घिनावना अपराध कर रहा है। क़ुरआन मजीद इस साम्राज्यवादी अन्दाज़ की भर्त्सना करते हुए कहता है—

"जिन लोगों को अल्लाह ने अपनी उदार अनुकंपा से दिया है और फिर वे कंजूसी से काम लेते हैं, वे यह न समझें कि यह कंजूसी उनके लिए अच्छी है, नहीं यह उनके लिए बहुत ही बुरी है।" (3 : 180)

"जो लोग सोना और चाँदी जमा करके रखते हैं और उन्हें ईश्वर के मार्ग में ख़र्च नहीं करते उन्हें दुखद यातना की शुभ सूचना दे दो।" (9 : 34)

ज़रूरत से ज़्यादा दौलत जमा करके रखने को इस्लाम सख़्त नापसन्द करता है। जहाँ इस्लाम दौलत की जमाख़ोरी को ग़लत और गुनाह समझता है वहीं भलाई के कामों पर ख़र्च करने पर उभारता भी है। अगर आपकी ज़रूरतों की पूर्ति के बाद कुछ माल बच जाए तो ऐश-आराम का साधन बनाना इस्लाम के निकट नापसन्दीदा है, बल्कि ज़रूरतमन्दों पर उस माल को ख़र्च किया जाए ताकि समाज की बुनियादें सुकून-शान्ति और न्याय जैसी मान्यताओं पर उठ सकें। क़ुरआन में है—

"और वे तुमसे पूछते हैं कि क्या ख़र्च करें? कहो कि जो ज़रूरत से अधिक हो।" (2 : 219)

दूसरी जगह है—

"और नेक सुलूक करो अपने माता-पिता के साथ और अपने रिश्तेदारों और नादार मिसकीनों और रिश्तेदार पड़ोसियों और अजनबी पड़ोसियों और पास बैठनेवाले साथियों और मुसाफ़िरों और अपने लोण्डी-ग़ुलामों के साथ।" (4 : 36)

एक और जगह है—

"और उनके मालों में हक़ हैं माँगनेवालों और उनके लिए जो पाने से रह गए हों।" (51 : 19)

कंजूस और संकुचित पूँजीवादी सोच दौलत को दिल खोलकर ख़र्च करने को दिवालिएपन और ग़रीबी का रास्ता समझती है जबकि इस्लाम

के निकट यह काम बरकत और दौलत को बढ़ाने का साधन है। क़ुरआन में है—

"शैतान तुम्हें निर्धनता से डराता है और (कँजूसी जैसी) शर्मनाक नीति अपनाने के लिए उकसाता है, मगर अल्लाह तुम्हें अपनी बख़्शिश और उदार कृपा की उम्मीद दिलाता है।' (2 : 268)

"और तुम नेक कामों में जो कुछ ख़र्च करोगे वह तुमको पूरा-पूरा वापस मिलेगा और तुमपर हरगिज़ ज़ुल्म नहीं होगा।"

"और जिन लोगों ने हमारे बख़्शे हुए रिज़्क़ में से खुले और छिपे तरीक़े से ख़र्च किया, वे एक ऐसे व्यापार की उम्मीद रखते हैं जिसमें घाटा हरगिज़ नहीं है। अल्लाह उनके बदले उनको पूरा-पूरा बदला देगा, बल्कि अपने उदार अनुग्रह से कुछ अधिक ही देगा।" (35 : 29, 30)

कुछ ही दिनों पहले पूँजीवादी व्यवस्था ने जिस बड़े पैमाने पर दौलत को समेटकर जमा कर दिया उसके नतीजे में दुनिया असाधारण रूप से आर्थिक मन्दी का शिकार हो गई। ये सब स्पष्ट बातें हैं। इसके मुक़ाबले में इस्लामी दौर की व्यवस्था पर नज़र डालें तो मालूम होता है कि इस आर्थिक विचारधारा ने क़ौम को ख़ुशहाली की ऊँची सतह पर पहुँचा दिया था।

ज़कात इस्लाम की एक न्यायपूर्ण व्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण स्तम्भ है। जो लोग अपनी ज़रूरतों को पूरा करने के बाद भी बाक़ी दौलत रखते हैं उनको न केवल शिक्षा और प्रोत्साहन के द्वारा कामों में ख़र्च करने पर उभारा जाता है बल्कि दौलत की कम से कम मात्रा तो इस काम के लिए ख़र्च करना उनपर अनिवार्य ही कर दिया गया है। इसी का नाम ज़कात है। क़ुरआन में अनेकों स्थान पर ज़कात का आदेश दिया गया है।

मक़सद यह है कि आपसी सहयोग, ग़रीबों की मदद, समाज की भलाई की चिन्ता, दुख-दर्द बाँटने का भाव और दानशीलता जैसे उच्च

स्तरीय गुण हर व्यक्ति में परवान चढ़ें। समाज के वे लोग जिनमें दानशीलता और विशाल-हृदयता का भाव कम हो वे भी अनिवार्यतः एक निश्चित मात्रा अवश्य ही ख़र्च करें। क़ुरआन में है–

> "ऐ नबी, इनके मालों में से सदक़ा वुसूल करो जो इनको पाक कर दे और इनका तज़किया करे।" (9 : 103)

यहाँ यह बात स्पष्ट होती है कि ज़कात की अदायगी एहसान के भाव पर निर्भर नहीं है, बल्कि अनिवार्य है। ज़कात को अदा न करना ख़ियानत और एक प्रकार का हक़ मारना है। यह एक नापाकी की हालत है, जबकि ज़कात को अदा कर देना माल की पाकी और आदमी के तज़किया का कारण है।

इतने स्पष्ट और साफ़ आदेशों और निर्देशों को उनके वास्तविक भाव के साथ लागू किया जाए तो सम्भव नहीं कि समाज किसी दर्जे में भी भेदभाव का शिकार हो जाए।

न्याय और इनसाफ़ पर आधारित समाज के लिए इस्लाम ने कुछ सीमाएँ निर्धारित की हैं–

- न्याय और इनसाफ़ के स्वयं घड़े हुए फ़लसफ़े स्वीकार्य नहीं हैं। अल्लाह के आदेशों एवं निर्देशों का अनुसरण करना सबके लिए अनिवार्य है।
- व्यक्ति की आज़ादी की सीमाएँ निर्धारित कर दी गईं। इन्हें फलाँगने का अधिकार किसी को नहीं।
- दौलत के आदान-प्रदान के स्पष्ट सिद्धान्त निश्चित हैं, जिसने अत्याचारपूर्ण रूप से किसी का माल हड़प करने के रास्ते बन्द कर दिए हैं।
- दौलत के इस्तेमाल के उसूल भी तय (निश्चित) हैं। निषिद्ध या हराम कामों के लिए कोई व्यक्ति अपनी दौलत को ख़र्च नहीं कर सकता।

- सामाजिक सेवा के लिए दौलत का ख़र्च किया जाना अनिवार्य कर दिया गया।
- आर्थिक अत्याचार के निवारण के लिए हुकूमत को पूरा अधिकार है।
- सारी दौलत हुकूमत के हाथों में रहे इसको इस्लाम पसन्द नहीं करता। व्यक्ति को उसकी मेहनत और योग्यता के आधार पर अल्लाह के उदार अनुग्रह को तलाश करने का पूरा हक़ है। लेकिन सामूहिक हितों को सामने रखते हुए सरकारी प्रबन्ध के संरक्षण में किसी उद्योग का चलाया जाना या व्यापार किया जाना भी अवैध नहीं।

अल्लामा यूसुफ़ु अल-क़रज़ावी (मिस्र के एक इस्लामी विद्वान) ने अपनी एक किताब 'इस्लाम में ग़रीबी का इलाज' में इस विषय पर विस्तृत वार्ता की है और बताया है कि किस प्रकार इस्लामी व्यवस्था पैदावार को बढ़ाती और ग़रीबी को कम करती है और किस तरह इस व्यवस्था के होते कोई वर्ग ग़रीब नहीं रहता।

हमारी ज़िम्मेदारियाँ

- पूँजीवादी व्यवस्था अत्याचार, लूट-खसोट, दमन और ज़बरदस्ती का दूसरा नाम है। इस अन्तर्राष्ट्रीय लूट-खसोट पर ख़ामोश रहकर तमाशा देखते रहना किसी मुसलमान का काम नहीं हो सकता और न ही हम इस विभाजित समाज (Polarised Society) के किसी एक हिस्से से जुड़कर सन्तुष्ट रह सकते हैं। हमें इस अत्याचारी व्यवस्था का विरोध करना है। साम्राज्यवादी चेहरों और उनके कामों से होनेवाले चौतरफ़ा नुक़सानों से लोगों को अवगत कराना है तथा जनता में एक जागृति लाना भी हमारी ज़िम्मेदारी है।
- इस्लामी जीवन-व्यवस्था की बरकतों से दुनिया को परिचित कराना भी हमारी एक महत्त्वपूर्ण ज़िम्मेदारी है। ऐन्द्रिक-सुख, शैतानी वसवसे और माल और दौलत की हवस ग़ैर-इस्लामी विचारधारा के स्रोत हैं। जबकि इस्लामी जीवन-व्यवस्था इनसानों की भलाई और

सामूहिक न्याय जैसे उत्कृष्ट उद्देश्यों को पूर्ण करती है। इस बुनियादी विचारधारा का प्रचार-प्रसार और मुसलमानों में इस विचारधारा के प्रति विश्वास को बनाए रखना भी हमारी एक ज़िम्मेदारी है।

- एक उल्लेखनीय वर्ग उन व्यक्तियों का भी पाया जाता है जो इस्लामी जीवन-व्यवस्था पर ईमान तो ज़रूर रखता है लेकिन उसके सामने कोई व्यावहारिक मॉडल न होने की वजह से वह कुछ शंकाओं का शिकार रहता है या मौजूदा हालात में इसे अव्यावहारिक समझता है। उस वर्ग की शंकाओं को दूर करना भी सूझ-बूझ रख़नेवाले लोगों की ज़िम्मेदारी है।
- मुसलमानों को अपव्यय और फ़ुज़ूलख़र्ची का शैतानी रवैया अपनाना शोभा नहीं देता। जगमगाती पार्टियों, दौलत की ग़लत नुमाइश और बदतरीन अपव्यय के द्वारा खुल्लम-खुल्ला इस्लामी सादगी और सम्माननीय उसूलों की धज्जियाँ उड़ाना एक मोमिन का काम नहीं हो सकता।
- एक विशेष कल्चर में रहकर सिर्फ़ अपने चतुर्दिक घेराबन्दी करके रहना भी पर्याप्त नहीं है, बल्कि मानवतावादी और ग़रीबी की पोषक व्यवस्था को व्यावहारिक रूप देने का दृढ़संकल्प रखना और उसके लिए प्रयास करना भी ज़रूरी है। इरादा नेक हो तो इसको वास्तविकता में ढलते देर नहीं लगती।

यहाँ पर यह बात भी समझ लेनी चाहिए कि प्रत्येक अवधारणा (पूँजीवादी और साम्यवादी अवधारणा सहित) का ढाँचा आरम्भ में उसूलों की बुनियाद पर ही खड़ा होता है। फिर एक लम्बे समय तक उन उसूलों पर व्यावहारिक मॉडल्स क्रमवार निर्मित होते हैं। फिर एक लम्बे समय के पश्चात उस व्यावहारिक मॉडल की अस्ल शक्ल अपनी अच्छाइयों और बुराइयों के साथ सामने आती है। सार यह कि उसूलों और सिद्धान्तों की

पारदर्शिता सम्बन्धित अवधारणाओं की मज़बूती का प्रतिबिम्ब होती है।

आज के पूँजीवादी मॉडल को उसके बनानेवालों ने भी सम्भवतः मौजूदा शक्ल में न देखा हो। लेकिन उन्हीं के दिए हुए उसूलों ने इस मॉडल को मौजूदा स्थिति तक पहुँचाया है।

हुकूमत की ज़िम्मेदारियाँ

जन-जागृति के साथ-साथ कुछ महत्त्वपूर्ण समाजी ज़रूरतों की ओर हुकूमतों को तवज्जोह दिलाना हमारी ज़िम्मेदारी है।

- बुनियादी इनसानी ज़रूरतों (उदाहरण के लिए कपड़ा, बुनियादी तालीम, मकान और ज़रूरी स्वास्थ्य-सम्बन्धी सेवाओं) को हर नागरिक का क़ानूनी तौर पर बुनियादी हक़ स्वीकार किया जाए। हुकूमत की यह ज़िम्मेदारी हो कि इन बुनियादी इनसानी ज़रूरतों से कोई नागरिक महरूम न रहे। इस प्रकार ग़रीबी और भीख माँगने की बुरी आदतों के ख़ातमे को सम्भव बनाया जाए।
- SEZs की Land Acquisition (भूमि अधिग्रहण) के सम्बन्ध में अपनाई जा रही ग़रीब-विरोधी पॉलीसियों पर रोक लगनी चाहिए। हुकूमतों को किसानों के अधिकारों को हनन करने का कोई अधिकार नहीं। SEZs के लिए ज़मीन पर क़ब्ज़े से पहले सम्बन्धित ज़मीन के मालिकों, ग्राम सभा और मानवाधिकार संगठनों की स्वीकृति अनिवार्य हो। PESA एक्ट के उल्लंघन की न्यायिक जाँच हो।
- उपयोगी वस्तुओं के प्रोपेगण्डे और इश्तिहारबाज़ी की सच्चाई और उनके नैतिक स्तर की पुष्टि के लिए एक ख़ुदमुख़्तार (Sovereign) संस्था स्थापित की जाए। यह संस्था उत्पादनों के प्रोपेगण्डे के लिए अपनाए जा रहे हथकण्डों पर नज़र रखे और जनता को इश्तिहारबाज़ी (प्रोपेगेण्डे) की लूट से सुरक्षित रखे।
- हमारे देश में पॉलीसी बनाना व्यवहारतः विशेष वर्ग का ही अधिकार बनकर रह गया है। विशेष रूप से पिछले एक दशक से

पॉलीसी बनाने की क्रिया में सलाह-मशविरे से बचने का रुझान स्पष्ट रूप से महसूस किया जा रहा है। पॉलीसी बनानेवाले आम जनता पर सरकारी पॉलीसियों के प्रभाव को आम तौर पर भुला देते हैं। इस रुझान का तुरन्त बदला जाना आवश्यक है। लोकतन्त्र की बुनियादी अपेक्षा यह है कि राज्य की नीतियाँ जनता के बीच बहस व डिस्कशन के बाद ही बननी चाहिएँ।

- ग्रामीण स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवाओं के मेकानिज्म को और अधिक प्रभावी बनाना और उसपर पूरा-पूरा अमल होने को यक़ीनी बनाना भी एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है। गाँवों में स्वास्थ्य सम्बन्धी बुनियादी ज़रूरतों के सिलसिले में शंकाजनक स्थिति को ख़त्म करना सरकार की प्राथमिकताओं में हो।

Sources:

1. NSS Report No. 508 Level & Pattern of Consumer Expenditure, 2004-05
2. www.bplplanning.gov.in
3. 2007 HD Report UN Development Program
4. Poverty Facts & Status: by Anup Shah
5. The Globalization of Inequality: P. Sainath
6. मआशियाते-इस्लाम : सैयद अबुल-आला मौदूदी
7. Down to Earth (Oct 06)
8. Debt– The Facts– New Internationalist
9. Farmers Suicide : P. Sainath (The Hindu-14/Nov 2007)
10. www.un.org
11. The Price of American Empire
12. Economic Growth– A Meaningless Obsession: Amit B
13. Socio-economic Inepuality and Its Effects of Heathcare Delivery in India - Dr M. Deogaonkar– Electronics Journal of sociology
14. माद्दियत और रूहानियत : मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ
15. Bop-Piracy : Vandana Shiva
16. इस्लाम में ग़रीबी का इलाज : यूसुफ़-अल क़रज़ावी

☆☆☆